कोसलराज पसेनदि

(कोशलराज प्रसेनजित)

विपश्यना विशोधन विन्यास

कोसलराज पसेनदि

(कोशलराज प्रसेनजित)

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

H98 - कोशलराज प्रसेनजित

© विपश्यना विशोधन विन्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : सितंबर २०१८

ISBN 978-81-7414-405-8

प्रकाशकः
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला - नाशिक, महाराष्ट्र
फोनः ०२५५३-२४४९९८. २४४०७६,
२४४०८६, २४४१४४, २४४४४०;
Email: vri_admin@vridhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रकः
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.,
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

कोशलराज प्रसेनजित

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय ७

अध्याय–१ ..... ११

कोशल राजकुल : परिचय ११

प्रसेनजित ११

देवी मल्लिका ११

वासभखत्तिया १२

सोमा और सुकुला १२

बिट्टूभ १२

सुमना १२

बावरी १३

अध्याय–२ ..... १४

शंकालु प्रसेनजित १४

भिक्षुसंघ की उपेक्षा १४

क्या बुद्ध सर्वज्ञ हैं? १६

बुद्ध और निंदित कर्म! १७

प्रिय से उत्पन्न होते शोक, दुःख १९

आयु न देखो भिक्षु की २२

अध्याय–३ ..... २५

प्रसेनजित का प्रश्न २५

पुद्गल (मनुष्य) के चार प्रकार २५

श्रेष्ठ वर्ण कौन? २६

मनचाही से प्रीत २७

निर्लोभी कितने? २८
किसको दान देने से महाफल? २९
किसको अपने से प्यार? ३०
अपना रक्षक कौन? ३१
तीन अहितकर धर्म ३२
अप्रमाद के गुण ३२
संत धर्म न होय पुराना ३३
अव्याकृत क्यों? ३४
क्या देव मानवलोक में जन्म लेते हैं? ३५
अध्याय–४ ..... ३७
कोशलराज ने उपदेश कहा ३७
सम्यक आहार ३७
सम्यक विहार ३९
पुत्री-महिमा ४०
सभी चमकीले सोना नहीं ४०
मक्खीचूस की गति ४१
सेठ, पुण्य कमाओ ४३
संतों से छल नहीं ४४
घड़े को फूटना ही है ४७
मृत्यु बनाम धर्माचरण ४८
अध्याय–५ .....५०
धर्म की सुधर्मता ५०
बंधन को जानो ५०
सबके प्रति निर्वेद ५१
पांच बातें अप्राप्य ५२
कुटिल वचन साधू सहे ५३
भिक्षु द्वारा स्थान परिवर्तन ५५

नियम संशोधन.....५६
स्थविर से भूल.....५७
भिक्षुणी को गर्भ!.....५८
साधु साधु....की गंध.....५९
कोई दूसरा प्रिय नहीं.....६०
श्रद्धालु देवी मल्लिका.....६१
बुद्ध और उनकी चमक.....६२
शास्ता का गौरव.....६३
प्रशंसितों के प्रशंसित.....६४
धर्म की सुधर्मता.....६५
अध्याय-६.....६७
राजा प्रसेनजित.....६७
शाक्यकुल में ब्याह.....६७
श्रेष्ठी को अपने राज्य में बसाना.....६९
न्यायालय में झूठ.....७०
दोषयुक्त सत्कार.....७१
गम की रात.....७१
निधि अर्जन.....७२
भिक्षुणी-निवास.....७२
कस्सप का लालन-पालन.....७४
पुरोहितपुत्र बावरी.....७५
जल में हंसखेल नहीं.....७५
महामात्य को होश.....७६
चैन की नींद.....७७
अध्याय–७.....७९
तृष्णा, तू न गयी.....७९
दुःस्वप्न और तीन भय.....७९

सुख-शांति की हत्या ८३
दो गज जमीन भी न मिली ८५
जैसी करनी वैसी भरनी.....८६
अध्याय–८.....८८
उपासक प्रसेनजित ८८
जो जाने सो निहाल ८८
धरम बड़ा बलवान ९०
सत्कार धम्मकाया का.....९२
विपश्यना साधना केंद्र ९४

प्रकाशकीय

बुद्धकालीन भारत में गणराज्यों के बीच दो शक्तिशाली राजतंत्र भी रहे– मगध और कोशल। मगध का राजा बिम्बिसार और कोशल का राजा प्रसेनजित आपस में संबंधी थे और मित्र भी। दोनों ही भगवान बुद्ध के उपासक थे, पर उनके प्रति जितना समर्पण भाव बिम्बिसार में पहले से ही था, उतना प्रसेनजित में नहीं। हाँ, प्रसेनजित की बुआ देवी सुमना अर्हत्व अवस्था को प्राप्त थीं और उनकी रानी देवी मल्लिका की श्रद्धा भगवान के प्रति अटूट थी। देवी मल्लिका के प्रभाव और प्रयास से महाराज प्रसेनजित भी क्रमशः बुद्ध, धर्म और संघ के काफी निकट आ गये।

एक रात राजा प्रसेनजित ने सोलह भयानक स्वप्न देखे। जब उन्होंने अपने पुरोहित से स्वप्नों के बारे में बताया, तो पुरोहित ने कहा– 'महाराज, ये स्वप्न आपके लिए और आपके राज्य के लिए बड़े ही घातक हैं। इनसे रक्षा के लिए आपको यज्ञ कराना होगा।' उन दिनों यज्ञों में गाय, बैल, बछड़े, भेड़, बकरे आदि पशुओं की हत्या की जाती थी। जब इस हिंसक यज्ञ की बात मल्लिका को मालूम हुई, तब उन्होंने राजा से पूछा। स्वप्न की बात जानने पर उन्होंने पूछा, 'महाराज! आप लोक में सबसे महान ब्राह्मण के पास नहीं गये?' राजा ने पूछा– 'वह कौन है?' मल्लिका ने कहा– 'महाराज! सम्यक संबुद्ध।' फिर वह राजा को लेकर भगवान के पास गयी। शास्ता ने सभी स्वप्नों की व्याख्या करते हुए कहा– 'महाराज! आपको या आपके राज्य को इनसे कोई भय नहीं है। पुरोहित ने लोभ वश यज्ञ करने की बात कही है।' वहां से आकर मल्लिका ने सभी पशुओं को छोड़वा दिया। जनता रानी मल्लिका की जय जयकार करने लगी।

श्रावस्ती वासी श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक और उपासिका विशाखा ने जेतवनाराम और पूर्वाराम बनवाकर संघ को दान कर दिया, जिनमें हजारों भिक्षु विहार करते थे। जब राजा को पता चला कि दो हजार भिक्षु प्रति दिन अनाथपिण्डिक, विशाखा तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कुलों में भोजन करते हैं तब उन्होंने भी भगवान से कह कर प्रति दिन पाँच सौ भिक्षुओं को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया। पर, समुचित व्यवस्था के अभाव में एक सप्ताह बाद भिक्षुओं ने वहां जाना बंद कर दिया। राजा

के पूछने पर भगवान ने कहा कि श्रद्धा और विश्वास की कमी के कारण ऐसा हुआ।

अपने प्रति भिक्षुओं का विश्वास जीतने के लिए अमात्यों के परामर्श से राजा ने शाक्यकुमारी से विवाह का प्रस्ताव किया। अपने जात्याभिमान से प्रेरित शाक्यों ने छलपूर्वक दासीपुत्री वासभखत्तिया से राजा का विवाह कर दिया। उससे बिट्टूभ नामक एक पुत्र पैदा हुआ। पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में वह अपने ननिहाल कपिलवस्तु गया। वहां से लौटते समय उसे पता चला कि दासीपुत्री का पुत्र होने के कारण उसके आसन को दूध से धोया जा रहा था। उसी क्षण उसने प्रतिज्ञा की कि राजा होने पर वह उस आसन को खून से धोयेगा। राजा बनने पर पहला कार्य जो उसने किया वह था शाक्यों पर आक्रमण। आबाल, वृद्ध, बनिता सबको मरवा डाला। वहां से लौटते समय वह सेना सहित नदी के किनारे रात में विश्राम करने लगा। अचानक नदी में बाढ़ आयी। बिट्टूभ सहित पूरी सेना बह कर समुद्र में चली गयी। भगवान ने कहा– 'दोनों को अपने पूर्व जन्मों के कर्म का फल प्राप्त हुआ।'

एक दिन श्रावस्ती के एक वैश्य परिवार का इकलौता पुत्र मर गया। पिता भगवान के पास गया और उसने अपना दुखड़ा सुनाया। भगवान ने कहा– 'उपासक! प्रियों से दुःख ही प्राप्त होते हैं।' भगवान के उस कथन को पिता अन्य लोगों को बताता रहा। यह बात जानने पर राजा ने मल्लिका से उपहास के रूप में कहा। लेकिन जब रानी ने विभिन्न उदाहरणों द्वारा भगवान के कथन की सत्यता को पुष्ट किया, तो श्रद्धा सहित भगवान के नाम पर नमन करते हुए राजा ने स्वीकार किया– 'लगता है भगवान प्रज्ञा से बींध-बींध कर यह सब देखते हैं।'

एक दिन भगवान के पास बैठे राजा ने कहा– 'भन्ते! यह संसार विभिन्न प्रकार के लोगों से भरा है– उच्चकुल-कुलहीन, धनी-निर्धन, सुरूप-कुरूप, सदाचारी-दुराचारी आदि।' भगवान ने कहा– 'महाराज! आचार के आधार पर इस पूरी विभिन्नता को चार प्रकार में रखा जा सकता है। वे हैं– तम-तम परायण, तम-ज्योति परायण, ज्योति-तम परायण और ज्योति-ज्योति परायण।' ऐसा कह कर भगवान ने इनकी व्याख्या करके समझाया। राजा के पूछने पर भगवान ने बताया शील सम्पन्न व्यक्ति को दान देने से महाफल प्राप्त होता है।

जब राजा ने पूछा– 'भंते! तीन अहितकर धर्म कौन हैं,' तब भगवान

ने बताया– 'राग, द्वेष और मोह। ये महाकष्टकारी और दुःखदायी हैं। जिसने अपनी काया वचन और मन पर संयम कर लिया है, वही सुरक्षित है। जो अपनी काया वचन और मन से सदाचार करता है उसे अपने से प्यार है।'

एक बार महाराज भगवान की सेवा में तीन-चार दिन बाद आये। उन्होंने बताया कि एक कंजूस की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति को राजकोष में भरवा रहा था। – 'भन्ते, इतनी संपत्ति का स्वामी होने पर भी वह ठीक से खाता भी नहीं था।' भगवान ने कहा– 'महाराज! कंजूस न तो स्वयं खाता है, न परिवारजनों को खाने देता है, न ही कभी दान दक्षिणा देता है। उसका धन प्रेत की बावड़ी की तरह है जिसका पानी मनुष्य, पशु, पक्षी कोई भी नही पी सकता।'

राजा प्रसेनजित ने भिक्षुणी के बेटे का पोषण किया और बाद में उसे प्रव्रजित भी कराया। स्थविरी उप्पलवण्णा के साथ बलात्कार होने पर भगवान के कहने पर राजा ने नगर में भिक्षुणी विहार बनवाया। इस प्रकार भिक्षुणियां सुरक्षित हो गयीं।

एक बार महाराज रानी के साथ बातें कर रहे थे। राजा ने पूछा– 'मल्लिका! क्या तुम्हें अपने से अधिक कोई दूसरा प्रिय है?' रानी ने कहा– 'नहीं।' फिर रानी ने वही प्रश्न राजा से किया। राजा ने भी वैसा ही उत्तर दिया। तब दोनों भगवान के पास गये और अपना अनुभव उन्हें सुनाया। दोनों के उद्‌गार का अनुमोदन करते हुए भगवान ने उन्हें साधुवाद दिया।

महाराज के जीवनकाल में ही रानी मल्लिका का देहांत हो गया। उनके देहांत का समाचार सुनने पर राजा का चेहरा एकदम निस्तेज हो गया। राजा को दुःखी देख भगवान ने उन्हें समझाते हुए कहा– 'महाराज! व्याधि, जरा, मृत्यु, क्षय और नाश इन पांच बातों से लोक में कोई प्राणी नहीं बचा है। इससे दुःखी होने में अपनी ही हानि है।'

डाकू अंगुलिमाल का दमन करने जाते समय राजा भगवान के पास गये। वहां सुधरे रूप में उसे देख कर राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे बोल उठे– 'भगवान कैसे अदांतों का दमन और अशांतों का शमन करते हैं?'

महाराज प्रसेनजित ने तैर्थिकों से घूस प्राप्त कर जेतवन के पास

तैर्थिकाराम बनवाने की अनुमति दे दी। उसे रोकवाने के लिए भगवान ने बारी-बारी से आयुष्मान आनन्द और अग्रश्रावक सारिपुत्त तथा महामोग्गल्लान को भेजा। राजा उनसे मिले नहीं। यह जानने पर भगवान के मुख से निकल पड़ा 'इसे अपने राज्य में मरने का अवकाश नहीं मिलेगा'?

एक बार कोशलनरेश शास्ता से मिलने गये। उनके चरणों में सिर से नमस्कार कर उन्हें चूमने लगे और कहा– 'भन्ते मैं प्रसेनजित हूँ।' उनके प्रति अति श्रद्धा और आदर प्रदर्शित किया। 'भगवन! आप सम्यक संबुद्ध हैं, आपका धर्म अच्छी तरह आख्यात है'....

कुशीनारा का मल्लकुमार बंधुल प्रसेनजित का गुरुभाई था। राजा ने उसे अपना सेनापति बना दिया। उसकी कर्मठता देख कर बाद में उसे न्यायाधीश भी बना दिया। इससे घूसखोर न्यायाधीशों की आय बंद हो गयी। उन्होंने एक षड़यन्त्र रचा कि बंधुल कोशल राज पर अधिकार करना चाहता है। राजा को इस बात पर विश्वास हो गया। उन्होंने छलपूर्वक बंधुल सहित उसके पुत्रों की हत्या करा दी। बाद में बंधुल पत्नी का क्षमाभाव देख कर राजा की सुख-शांति भंग हो गयी। अपने चित्त की शांति के लिए राजा ने बंधुल के भांजे दीर्घकारायण को सेनापति बना दिया।

एक दिन राजा सेनापति के साथ भगवान के दर्शन के लिए गये। भगवान के पास जाने के पहले उन्होंने पाँच राजकीय चिह्न सेनापति दीर्घकारायण को सौंप दिये। सेनापति ने राजचिह्नों को राजा के पुत्र बिट्टूभ को सौंप कर उसे राजा घोषित कर दिया। भगवान के दर्शन के उपरांत जब राजा बाहर निकले तो एक घोड़ा और एक स्त्री को देख कर सब कुछ समझ गये। वह अपने भांजे अजातशत्रु से मदद लेने के लिए राजगीर की ओर चले। नगर में पहुंचने के पहले ही द्वार बंद हो गया था। वे एक धर्मशाला में ठहरे। सारे दिन की हैरानी परेशानी के फलस्वरूप वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। उनके नाम पर रोने के लिए वही एक स्त्री थी। उनकी यह गति उनके अपने कर्मों का ही फल था।

अध्याय-9

कोशल राजकुल : परिचय

प्राचीन भारत के सोलह जनपदों में एक विशाल एवं शक्तिशाली जनपद था कोशल। यह उस समय के विख्यात जनपद मगध के पश्चिम-उत्तर में स्थित था। कोशल की राजधानी थी श्रावस्ती और शासक था राजा महाकोशल। मगध और कोशल के राजा आपस में मित्र और रिश्तेदार थे। महाकोशल के एक पुत्र और एक पुत्री थी जिनके नाम थे प्रसेनजित और कोशलदेवी। कोशलदेवी का विवाह मगध राजकुमार बिम्बिसार के साथ हुआ था। यह भगवान बुद्ध का शासनकाल था। मगध की तरह कोशल और राजगृह की तरह श्रावस्ती उन दिनों भगवान के प्रमुख कार्यक्षेत्र और केंद्र थे। इसलिए सामान्य रूप से कोशल राजकुल और विशेष रूप से राजा प्रसेनजित और रानी मल्लिका का भगवान बुद्ध और धर्म के प्रति लगाव और सान्निध्य बढ़ना सहज एवं स्वाभाविक था।

प्रसेनजित

कोशलकुमार प्रसेनजित, लिच्छवीकुमार महालि और मल्लकुमार बंधुल सहपाठी थे। तीनों एक साथ तक्षशिला के आचार्य के यहां विद्याध्ययन हेतु गये थे। सफलतापूर्वक अध्ययन पूरा करके प्रसेनजित आचार्य की अनुमति से कोशल लौट आये। उनकी कुशलता देख कर राजा महाकोशल बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने राज्याभिषेक द्वारा कुमार का स्वागत किया। राजसत्ता पाने पर प्रसेनजित ने अच्छी तरह राजकाज संभाल लिया। कालक्रम में उनका झुकाव भगवान बुद्ध और भिक्षुसंघ की ओर हुआ। प्रारंभ में तो उनके प्रति प्रमाद भाव ही रहा, पर रानी मल्लिका के कारण राजा का झुकाव भगवान और उनके धर्म के प्रति बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे राजा भगवान के उपासक बन गये– मन, वचन और कर्म से।

देवी मल्लिका

प्रसेनजित की अग्र राजमहिषी देवी मल्लिका थीं तो मालाकार की बेटी पर सुंदर थीं, साथ-साथ वह विदुषी एवं बुद्धिमती थीं। संकट के

समय वह राजा को उचित परामर्श देती। धर्म और भगवान में उनका अटूट विश्वास था। मल्लिका के निवेदन पर ही भगवान से कह कर राजा ने रानियों को धर्म सिखाने हेतु स्थविर आनंद को भेजा था। बड़े ही मनोयोग से मल्लिका ने धर्म सीखा। ऐसा लगता है कि राजकुल में सर्वप्रथम देवी मल्लिका ने शास्ता की शिक्षा के प्रति सहज रुचि दिखायी। धर्मपाठ और ध्यान दोनों सीखे तथा नित्यप्रति अभ्यास करती थीं।

वासभखत्तिया

शाक्यकुमारी वासभखत्तिया प्रसेनजित की दूसरी राजमहिषी थी। भिक्षुओं से विश्वसनीय संबंध बनाने हेतु प्रसेनजित ने अपनी पहल पर यह विवाह किया था। शाक्य कुल की होने पर भी धर्म में उसकी रुचि बहुत सीमित थी। स्थविर आनंद के सिखाने पर भी न तो वह धर्मपाठ ध्यान से सुनती थी न ही याद करती थी।

सोमा और सुकुला

सोमा और सुकुला दोनों बहनें राजा प्रसेनजित की रानियां थीं। ऐसा लगता है कि दोनों बहनों का धर्म और भगवान के प्रति भाव उत्तम था। एक बार जब राजा प्रसेनजित भगवान के दर्शनार्थ जा रहे थे तब दोनों बहनों ने राजा द्वारा उनकी ओर से भगवान के चरणों में सिर से वंदना करने के लिए कहा। राजा ने वैसा किया भी जिसे सुनकर भगवान ने दोनों के सुखी रहने की मंगल कामना की।

बिट्टूभ

रानी वासभखत्तिया के गर्भ से पैदा हुआ बिट्टूभ, राजा प्रसेनजित का पुत्र था। राजा के सेनापति दीर्घकारायण ने धोखे से प्रसेनजित को सत्ताच्युत करके बिट्टूभ को कोशल का राजा बना दिया। बुद्ध और धर्म के प्रति उसका झुकाव रंचमात्र भी नहीं दिखायी पड़ता। अपने ननिहाल के शाक्यों से अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए उसने उन पर चढ़ाई की और भीषण जनसंहार किया। उसका अंत बड़ा दुःखद रहा।

सुमना

महाकोशल की बहन सुमना राजा प्रसेनजित की बुआ थीं। अपने अनेक पूर्वजन्मों में किये गये कुशल कर्मों द्वारा उन्होंने बहुत पुण्य का

संचय किया था। राजा प्रसेनजित को दिये जा रहे उपदेश को सुनकर उनके मन में धर्म के प्रति अपार श्रद्धा जागी। शील में प्रतिष्ठित हो उन्होंने प्रव्रजित जीवन व्यतीत किया। भगवान का उपदेश सुनकर उन्होंने अनागामी फल प्राप्त किया। कालांतर में विपश्यना के अभ्यास द्वारा अर्हत्व प्राप्त कर सभी दुःखों से मुक्त हो गयीं। उनके तप, ज्ञान और सुख-शांति की प्रशंसा स्वयं भगवान ने की है।

बावरी

यद्यपि बावरी राजकुल के नहीं थे फिर भी राजा के पुरोहित पुत्र होने के कारण वे राजकुल से बहुत निकट से जुड़े थे। पूर्वजन्मों के संचित पुण्य के कारण उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली पर राजा प्रसेनजित की प्रार्थना पर राजोद्यान में रहकर प्रव्रजित जीवन व्यतीत किया।

कोशल की राजधानी श्रावस्ती का जेतवन भगवान बुद्ध के विहार का प्रमुख स्थल रहा, जहां शास्ता ने उन्नीस वर्षावास किये। राजकुल की महिषी देवी मल्लिका और राजा प्रसेनजित का भगवान और धर्म के प्रति लगाव बढ़ता ही गया। उसके फलस्वरूप उन्होंने लौकिक जीवन में सुख-शांति और लोकोत्तर जीवन के लिए पुण्य अर्जित किया। आगे के अध्यायों में इन सबके बारे में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

अध्याय-२

शंकालु प्रसेनजित

भगवान बुद्ध के गुणों का बखान करते समय यह कहा गया है कि वे देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य) हैं। उन्हें ऐसी विद्या सिखाते हैं जिससे उनका जीवन सफल हो जाता है। इसी जन्म में वे आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। पर यह बात सबके लिए समान रूप से लागू नहीं होती थी। यह उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर भी निर्भर करता था जो भगवान के संपर्क में आता था। राजा प्रसेनजित के बारे में कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है। कई प्रसंगों पर ऐसा लगता है मानो प्रसेनजित भगवान और उनके धर्म से अनभिज्ञ हैं। उनके द्वारा सिखाये जानेवाले धर्म को आजमा ही रहे हैं। आगे कुछ ऐसे ही प्रसंग दिये गये हैं, जिनसे पता चलता है कि अभी धर्म के प्रति राजा की आस्था जमी नहीं है। ये केवल धर्म का छिलका ही छू पा रहे हैं।

भिक्षुसंघ की उपेक्षा

ऐसा लगता है कि भिक्षुसंघ से संबंधित राजा के जीवन की यह पहली घटना है। एक दिन राजा प्रसेनजित ने अपने महल की ऊपरी मंजिल से काफी बड़ी संख्या में भिक्षुसंघ को जाते हुये देखा। उन्होंने जानना चाहा– 'पूज्य लोग कहां जा रहे हैं?' अमात्य ने बताया कि दो हज़ार भिक्षु प्रतिदिन अनाथपिण्डिक, चुल्ल अनाथपिण्डिक तथा विशाखा के यहां भोजन के लिए जाते हैं। वहां उन्हें आदर और सम्मान के साथ भोजन-दान किया जाता है। देखा-देखी राजा के मन में भी भिक्षुसंघ की सेवा करने का विचार आया। राजा के निवेदन पर सात दिनों तक भगवान सहित भिक्षुसंघ भोजन-दान के लिए आते रहे। सातवें दिन राजा ने भगवान से प्रार्थना की– "भंते, अब से भगवान पांच सौ भिक्षुओं के साथ लगातार प्रतिदिन मेरे यहां भिक्षा स्वीकार करें।" भगवान ने राजा के निवेदन को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था बुद्ध एक ही स्थान पर लगातार भिक्षा ग्रहण नहीं करते क्योंकि बहुत से लोग बुद्धों के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। अतः उन्हें पुण्य से वंचित नहीं किया जा सकता।

बाद में महाराज के विशेष आग्रह पर भगवान ने स्थविर आनंद को यह जिम्मेदारी सौंप दी। आनंद सहित भिक्षुसंघ राजा के यहां नियत समय पर भोजन के लिए जाता रहा। प्रथम सात दिनों तक भिक्षुसंघ को भोजन तो दिया पर राजा की ओर से भिक्षुसंघ के प्रति प्रायः आदर और सम्मान का अभाव रहा। आठवें दिन किसी भी प्रकार की आवभगत नहीं हुई। न तो निर्धारित समय का ध्यान, न आसन की व्यवस्था, न ही कायदे से बैठने का स्थान। ऊपर से भोजन परोसने में भी लापरवाही जिसके कारण भिक्षुओं को काफी देर तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ी। काफी समय बाद भोजन मिला। ऐसी स्थिति में बहुत से भिक्षुओं ने वहां प्रतीक्षा करना उचित नहीं समझा और चले गये। दूसरे दिन भी राजा की ओर से भिक्षुओं के भोजन का वही हाल रहा। तीसरे दिन भी वैसी ही उपेक्षा देखकर स्थविर आनंद को छोड़कर सभी भिक्षु वहां से बिना भोजन किये लौट गये। स्थविर सारिपुत्त और महामोग्गल्लान, अग्रश्राविका खेमा जैसे अनेक महान पुण्यवंत, जिन्हें कुलों की श्रद्धा की रक्षा का बहुत ही ख्याल था, बिना भोजन किये लौट गये। स्थविर आनंद भी ऐसे पुण्यवान लोगों में थे, पर वे लौटे नहीं। उस दिन केवल उन्होंने ही भोजन किया। भिक्षुओं के चले जाने के बाद जब राजा ने ढेर सारा भोजन बचा हुआ देखा तो पूछा– 'क्या पूज्य लोग भोजन के लिए नहीं आये?' सेवक ने बताया– 'देव, केवल स्थविर आनंद आये थे।' 'तो उन्होंने हमारा इतना खाना नष्ट किया?' भिक्षुओं का यह आचरण राजा को पसंद नहीं पड़ा। उनके इस व्यवहार से क्रुद्ध राजा प्रसेनजित भगवान के पास गये।

राजा ने भगवान से भिक्षुओं की शिकायत की– 'भंते, मैंने पांच सौ भिक्षुओं के लिए भोजन की तैयारी की थी पर केवल स्थविर आनंद आये। मेरा सारा भोजन नष्ट हुआ। कोई मेरे घर तक आया नहीं। क्या कारण हो सकता है?'

भगवान राजा प्रसेनजित के भाव और मानसिक स्थिति को भली भांति समझ गये। पर उन्होंने भिक्षुओं को तनिक भी दोष नहीं दिया। राजा से बोले– 'महाराज, मेरे शिष्यों को आपके यहां श्रद्धा और विश्वास का अभाव लगा होगा, इसलिए वे नहीं गये।' राजा की उपस्थिति में ही भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करके राजकुलों के यहां जाने और न जाने के संबंध में निम्नलिखित नौ सूत्र सुनाया– 'भिक्षुओ, भिक्षु उस कुल में न जाय"।

१. जहां प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत न किया जाय।

२. जहां उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम न किया जाय।

३. जहां प्रसन्नता से उसे आसन न दिया जाय।

४. भोजन और दान सामग्री को छिपाकर रखा जाय।

५. बहुत सामग्री होने पर भी थोड़ा दिया जाय।

६. श्रेष्ठ पदार्थ के रहने पर भी घटिया दिया जाय।

७. वस्तु-पदार्थ को उचित ढंग से न दिया जाय।

८. धर्म सुनने के लिए लोग न बैठें, और

९. भिक्षु के प्रवचन को लोग ध्यान से न सुनें।

'इन नौ बातों से युक्त कुल में यदि भिक्षु नहीं गया तो यह उपयुक्त है। और यदि चला गया तो वहां न बैठना उपयुक्त है। महाराज, इन नौ बातों के अन्यथा होने पर भिक्षु का राजकुलों में जाना और बैठना दोनों ही उपयुक्त है।'

फिर शास्ता ने राजा को पूर्व काल की एक ऐसी ही घटना सुनायी जब राजा की ओर से श्रद्धा का अभाव होने पर पांच सौ तापस राजकुल वास का त्याग कर विश्वसनीय निवास को चले गये थे।

क्या बुद्ध सर्वज्ञ हैं?

भगवान के जीवनकाल में कुछ ब्राह्मण और श्रमण उन्हें सर्वज्ञ जानते और मानते थे। पर भगवान स्वयं अपने बारे में उनके इस कथन से सहमत नहीं थे। वे इसका खंडन करते और कहते थे 'ऐसा कर सकना असंभव है।' तब तक राजा प्रसेनजित की निष्ठा भी शास्ता के बारे में दृढ़ नहीं हुयी थी। दूसरे श्रमणों-ब्राह्मणों द्वारा वे जो कुछ सुनते, उसी में कुछ जोड़ते-घटाते हुये डूबते-उतराते रहते और यह जानना चाहते कि वास्तविकता क्या है?

एक बार प्रसेनजित कुछ काम से ऋजुका निगम में आये हुए थे। उन दिनों शास्ता भी ऋजुका के मृगदाव में विहार कर रहे थे। राजा भगवान के दर्शनार्थ उनसे मिलने पहुंचे।

विभिन्न श्रमणों-ब्राह्मणों द्वारा सुनी बात उन्होंने भगवान के सामने रखी– "भंते, मैंने बहुत से श्रमणों-ब्राह्मणों से ऐसा सुना है कि श्रमण गौतम यह कहते हैं, 'ऐसा कोई भी श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ हो, सर्वदर्शी हो और निःशेष ज्ञानदर्शन को जाने। यह संभव नहीं है।' भंते, क्या वे लोग भगवान के बारे में सत्य कहते हैं या असत्य? क्या वे जो कुछ भी कहते हैं वह धर्मानुसार है? ऐसा कहकर वे लोग भगवान की निंदा तो नहीं करते, आप पर कोई लांछन तो नहीं लगाते?"

"महाराज, जो यह कहते हैं कि 'श्रमण गौतम ने ऐसा कहा है कि ऐसा कोई भी श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो सर्वज्ञ हो, सर्वदर्शी हो। यह असंभव है' वे मेरे बारे में सच नहीं कहते। वे असत्य कहकर मेरे ऊपर लांछन लगाते हैं।"

भगवान के बारे में ऐसी चर्चा राजा के अंतःपुर में ही चली थी। भगवान के उक्त कथन के पश्चात प्रसेनजित यह जानना चाहते थे कि वास्तव में भगवान ने क्या कहा है?

"भंते, लगता है आपने कुछ और सोचकर कहा हो, जिसे लोग बिना समझे-बूझे कहते फिर रहे हैं।"

भगवान ने कहा– "हां, महाराज, बात ऐसी ही है। मैंने जो कुछ कहा है वह मुझे अच्छी तरह याद है। मैंने यह कहा है– 'ऐसा कोई भी श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो एक ही समय में सब जानेगा, सब देखेगा। यह संभव नहीं है।.....वह जिसे जब चाहेगा जान और देख लेगा। पर एक ही समय में सब कुछ जान सकना, देख सकना असंभव है।"

भगवान के कथन की वास्तविकता को समझ कर उसका अनुमोदन करते हुये राजा ने संतोष व्यक्त किया। वे भगवान का अभिवादन कर वहां से विदा हो गये।

बुद्ध और निंदित कर्म!

शंकालु मन की गति विचित्र होती है। वह अपने लिए कोई-न-कोई खुराक खोज ही लेता है। प्रसेनजित कोशल के मन में रह-रह कर भगवान के बारे में किसी-न-किसी प्रकार की शंका उठ ही जाती थी। एक दिन दोपहर के समय राजा अपने हाथी पर सवार होकर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने स्थविर आनंद को आते हुये देखा। अपने सेवक को

भेज कर वहीं रुके रहने की आनंद से प्रार्थना की। आनंद ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। आनंद के पास पहुंचकर प्रसेनजित ने स्थविर का समुचित अभिवादन किया और उनके बैठने की वहीं उचित व्यवस्था की। स्वयं भी एक ओर पास में बैठ गया।

राजा ने अपने मन का संदेह आनंद के सामने प्रकट किया– 'भंते, क्या भगवान ऐसा आचरण (कायिक, वाचिक और मानसिक) कर सकते हैं जो श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञों द्वारा निंदित हो?'

'नहीं महाराज, यह विचार आपके मन में कैसे उठा? बुद्ध और निंदित आचरण! असंभव।'

आनंद का ऐसा दो-टूक और स्पष्ट उत्तर सुनकर राजा को आश्चर्य-मिश्रित सुख हुआ। – 'भंते, जो उत्तर हम दूसरे श्रमणों से नहीं पा सके वह आप से मिल गया। निश्चय ही आपने यह भलीभांति जानकर और सोच-समझकर कहा होगा। अच्छा भंते, कौन सा आचरण श्रमणों, ब्राह्मणों और पंडितों द्वारा निंदित है?'

'महाराज, जो आचरण सदोष हो, हिंसायुक्त हो और दुःखदायी हो।'

'दुःखदायी आचरण क्या है?'

'महाराज, जो आचरण अपनी पीड़ा के लिए होता है, पर-पीड़ा के लिए होता है और दोनों की पीड़ा के लिए होता है। इससे अकुशल धर्म की वृद्धि होती है, कुशलधर्म का ह्रास। इस प्रकार का आचरण निंदित है।'

'भंते, अकुशल आचरण क्या है?'

'महाराज, जो आचरण सदोष है, हिंसायुक्त है और अंत में दुःखदायी है।'

'भंते आनंद, क्या भगवान सभी अकुशल धर्मों का विनाश कर चुके हैं?'

'हां महाराज, तथागत सभी अकुशल धर्मों से रहित और कुशल धर्मों से युक्त हैं।'

अभी भी राजा का संदेह निर्मूल नहीं हुआ। उन्होंने आगे पूछा– 'भंते, कौन-सा आचरण श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञों द्वारा अनिंदित है?'

'महाराज, जो आचरण कुशल है, निर्दोष है, सुखदायी है। न अपनी पीड़ा के लिए होता है, न पर-पीड़ा के लिए होता है और न ही दोनों की पीड़ा के लिए होता है। उससे अकुशल धर्म का नाश होता है और कुशल धर्म बढ़ते हैं।'

अभी भी राजा संतुष्ट नहीं हुए। 'भंते आनंद, क्या भगवान सभी कुशल धर्मों को प्राप्त कर चुके हैं?'

'हां महाराज, तथागत सभी कुशल धर्मों से युक्त और अकुशल धर्मों से रहित हैं। महाराज, जैसे आग और काठ एक साथ नहीं रह सकते वैसे ही बुद्ध और निंदित कर्म एक साथ नहीं रह सकते।'

आनंद के ऐसे स्पष्ट, सत्य और मधुर कथन को सुनकर राजा बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने आनंद को बहुमूल्य भेंट देने का प्रस्ताव किया पर वे सब आनंद के लिए ग्राह्य नहीं थे। अंत में मगधराज अजातशत्रु द्वारा भेजी हुयी वाहीतिक (वाहीत राष्ट्र में निर्मित वस्त्र) प्रदान करते हुये उसे स्वीकार करने के लिए आनंद से प्रार्थना की। फिर आनंद ने कहा– 'महाराज, मेरे पास तो अभी पूरे चीवर हैं, इनकी आवश्यकता नहीं है।' राजा द्वारा पुनः सविनय आग्रह करने पर आनंद ने वह वाहीतिक स्वीकार कर ली।

तब राजा प्रसेनजित स्थविर के कथनों का अनुमोदन कर उनसे आज्ञा लेकर चले गये। आयुष्मान आनंद भगवान के पास गये। राजा के साथ हुये पूरे वार्तालाप को आनंद ने भगवान से कह सुनाया और वाहीतिक भगवान के चरणों में अर्पित कर दी।

भिक्षुओं को संबोधित करते हुये भगवान ने कहा– 'भिक्षुओ, इस वार्तालाप से और आनंद के दर्शन तथा सत्संग से प्रसेनजित कोशल को लाभ और सुख प्राप्त हुआ। इससे उनकी प्रवृत्ति धर्म की ओर बढ़ेगी।'

प्रिय से उत्पन्न होते शोक, दुःख.....

श्रावस्ती के एक वैश्य परिवार का इकलौता पुत्र मर गया। उसकी मृत्यु से गृहस्वामी को अपार क्लेश हुआ। उसे खाना-पीना, काम-धंधा, घूमना-फिरना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वह श्मशान में पहुंच कर विलाप करता– 'मेरे इकलौते पुत्र, तुम कहां हो? आ जाओ... जल्दी आओ... तेरा पिता...।' ऐसी हालत में वह भगवान के पास गया

और रोते-कलपते उसने आपबीती कह सुनायी– 'भंते, मैं अपने इकलौते पुत्र को चारों ओर खोजता हूं। श्मशान में भी जाता हूं, पर वह कहीं भी नहीं मिलता। मैं दिन-रात विलाप करता हूं। दुःख से विक्षिप्त हो जाता हूं।'

सब कुछ सुनने के बाद भगवान ने अपना अनुभव सुनाया– 'गृहपति, ऐसा ही है। प्रिय से शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... ही उत्पन्न होते हैं।'

'भंते, ऐसा क्यों? क्या प्रिय से शोक, दुःख... ही उत्पन्न होते हैं? प्रिय से तो सुख, शांति, आनंद... मिलते हैं।'

भगवान के कथन का अनुमोदन किये बिना मन-ही-मन अप्रसन्न गृहस्वामी वहां से चला गया। रास्ते में जो भी मिलता उसे भगवान का कथन सुनाता और उनकी निंदा करता। सामान्यतया श्रोताओं की सहानुभूति गृहस्वामी के साथ होती। भगवान के ऐसे कथन पर लोग आश्चर्य व्यक्त करते।

इसी प्रकार कहते-सुनते यह बात राजा तक पहुंच गयी। उन्हें भगवान के इस कथन का औचित्य समझ में नहीं आया। उन्होंने भी सामान्य व्यक्ति की तरह सोचकर पाया कि प्रिय तो सुखदायक, आनंददायक, शांतिदायक... होते हैं। उनसे शोक, दुःख क्यों मिले? आखिर श्रमण गौतम ने ऐसा क्यों कहा? इसी उधेड़-बुन में प्रसेनजित को देवी मल्लिका की याद आयी। ऐसा लगता है कि तब तक भगवान के प्रति महारानी की निष्ठा दृढ़ हो चुकी थी। इसलिए भगवान की शिष्या से ही राजा ने भगवान के कथन को स्पष्ट कराना उचित समझा। देवी मल्लिका को संबोधित कर प्रसेनजित ने कहा– 'देवी, कुछ सुना, तेरे श्रमण ने क्या कहा है? कहा कि प्रिय से शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... ही उत्पन्न होते हैं। क्या सचमुच ऐसा ही है?'

'महाराज, यदि भगवान ने ऐसा कहा है तो यह सच है।'

जैसे कुछ उपहास-भरे स्वर में प्रसेनजित ने कहा– 'ऐसी ही है मल्लिका! जो कुछ भी श्रमण गौतम कहता है, तू उसका अनुमोदन करती है। वैसे ही, जैसे एक श्रद्धालु शिष्य अपने आचार्य की प्रत्येक हां में हां मिलाये।' देवी मल्लिका का ऐसा करना राजा को जंचा नहीं। जैसे कुछ झिड़कते हुये उसने कहा– 'चल दूर हट मल्लिके, तेरा नाश हो।'

देवी मल्लिका ने भगवान के कथन का सही आशय जानना चाहा।

इस उद्देश्य से उन्होंने अपने एक विश्वस्त ब्राह्मण को भगवान बुद्ध के पास भेजा। देवी के निर्देशानुसार ब्राह्मण ने जाकर भगवान से उनका अभिवादन कहा और रानी द्वारा कही हुयी पूरी बात सुनायी।

भगवान ने अपने कथन की पुष्टि की– 'यह ऐसा ही है ब्राह्मण। प्रिय शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... के ही कारण हैं।' इसके साथ ही पूर्व काल के अनेक उदाहरणों द्वारा अपने कथन को प्रमाणित किया। भगवान ने बताया कि इसी श्रावस्ती में किसी का भाई, किसी का पुत्र, किसी की बहन, किसी की पुत्री... मर गयी थी जिसके कारण उन लोगों को अपार शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... झेलना पड़ा था। यह ऐसा ही है। कोई नयी बात नहीं है। प्रिय दुःख ही देते हैं।

भगवान के यहां से लौटने के बाद ब्राह्मण ने देवी मल्लिका को तथागत के साथ हुये पूरे वार्तालाप को यथावत कह सुनाया। श्रद्धालु मल्लिका भगवान के आशय को समझ गयी। वह राजा के पास पहुंची– 'महाराज, भगवान ने जो कुछ कहा है वह बिल्कुल वैसा ही है। प्रिय से शोक, दुःख, क्लेश, कष्ट... ही उत्पन्न होते हैं।'

'मल्लिके, कैसे?'

'क्या कहते हैं महाराज, वजीरी (राजा की इकलौती पुत्री) कुमारी आपको प्रिय है न?'

'हां देवी, वजीरी कुमारी मुझे प्रिय है।'

'अच्छा, अगर वजीरी कुमारी को कुछ अन्यथाभाव (मृत्यु) हो जाय तो क्या आपको शोक होगा, दुःख होगा.....?'

'देवी, वजीरी कुमारी को कुछ अन्यथाभाव (मृत्यु) होने पर शोक और दुःख ही क्या मेरे जीवन का भी अन्यथा हो सकता है।'

'महाराज, उन भगवान जाननहार, देखनहार ने यही सोचकर कहा है, प्रिय से शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... ही उत्पन्न होते हैं। अच्छा महाराज, सेनापति बिट्टूभ आपको प्रिय है न?'

'हां, सेनापति बिट्टूभ भी मुझे प्रिय है।'

'यदि सेनापति बिट्टूभ को कुछ अन्यथाभाव हो जाय तो आपको शोक, दुःख, कष्ट.... उत्पन्न होगा?'

'शोक, दुःख... की क्या बात देवी, मेरे जीवन का भी अन्यथाभाव हो सकता है।' अब रानी ने एक ही साथ कई लोगों के बारे में वैसे ही प्रश्न किया– 'महाराज, वासभखत्तिया आपको प्रिय है न, मैं प्रिय हूं न, कोशल-काशी प्रिय है न...।'

'अवश्य मल्लिके! अवश्य, ये सब मुझे प्रिय हैं।'

'यदि, महाराज इन सबको कुछ अन्यथाभाव हो जाय, तो आपको शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश...होगा?'

'शोक, दुःख की क्या बात, देवी! ये सब मेरे जीवन के आधार हैं। इनके अन्यथाभाव होने पर मेरे जीवन का भी निश्चय ही अन्यथाभाव समझो।'

'महाराज, उन जाननहार, देखनहार भगवान अर्हत सम्यकसंबुद्ध ने यही सोचकर ऐसा कहा कि प्रिय से शोक, दुःख, कष्ट, क्लेश... उत्पन्न होते हैं।'

अब कोशल प्रसेनजित की समझ में पूरी बात आ गयी। 'आश्चर्य है मल्लिके! आश्चर्य! लगता है भगवान प्रज्ञा से बींध-बींध कर यह सब देखते हैं।'

प्रसेनजित कोशल ने अपने आसन से उठकर हाथ-मुंह धोया। उन्होंने अपनी चादर कंधे पर रखी और जिधर भगवान थे उधर मुंह करके अंजलिबद्ध हो तीन बार यह उदान कहा–

'नमो तस्स भगवतो, अरहतो, सम्मासंबुद्धस्स.....

'उन भगवान अर्हत सम्यकसंबुद्ध को नमस्कार है, उन भगवान अर्हत सम्यकसंबुद्ध को नमस्कार है, उन भगवान अर्हत सम्यकसंबुद्ध को नमस्कार है।'

आयु न देखो भिक्षु की

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। कोशलराज प्रसेनजित भगवान के पास आये और अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। उनके मन में एक शंका घूम रही थी। उसके संबंध में वह दूसरे आचार्यों के उत्तर को जान चुका था। अब उन्होंने भगवान से पूछा– 'आप गौतम क्या अनुत्तर पूर्ण बुद्धत्व पा लेने

का दावा नहीं करते?'

'महाराज, यदि कोई किसी को सम्यकसंबुद्ध कहे तो मुझको ही कह सकता है। मैंने उस अनुत्तर पूर्ण बुद्धत्व का साक्षात्कार कर लिया है।'

भगवान का ऐसा उत्तर सुनकर राजा प्रसेनजित को आश्चर्य हुआ क्योंकि इसके पहले किसी अन्य आचार्य ने ऐसा स्पष्ट दावा नहीं किया था। प्रसेनजित ने कहा– 'हे गौतम, दूसरे श्रमण और ब्राह्मण, गणाचार्य, तीर्थंकर जैसे पूरण कश्यप, मक्खलि गोसाल, निगण्ठ नाथपुत्र आदि मेरे द्वारा पूछे जाने पर ऐसा दावा नहीं करते। आप तो गौतम नये-नये प्रव्रजित हुये हैं, आयु में भी छोटे हैं, आप ऐसा दावा किस आधार पर कर सकते हैं?'

भगवान ने कहा महाराज चार ऐसे हैं जिन्हें 'छोटे हैं' कह कर उनकी अवज्ञा, उपेक्षा या अपमान करना उचित नहीं– (१) क्षत्रिय, (२) सांप, (३) अग्नि और (४) भिक्षु। तत्पश्चात भगवान ने इसकी व्याख्या की–

'यशस्वी क्षत्रिय को 'छोटा है' जानकर कोई कम न आंके। राज्य पाने पर वह राजशक्ति का उपयोग करके अपने प्रति किये गये अपमान का बदला ले सकता है। फिर उससे जान बचाना मुश्किल हो जाता है।

'किसी स्थान पर सांप को देखकर 'छोटा है' सोचकर कोई उसे कम न समझे। असावधान रहने वाले को यदि वह डंस लेगा तो उसका बच पाना आसान नहीं।

'ऐसे ही आग को 'छोटा है' समझकर उसकी उपेक्षा न करे। जलावन पाने पर फैलकर, वह असावधान रहनेवाले को जलाकर राख कर सकती है। इसलिए अपनी जान बचाते हुये उससे संभल कर रहना चाहिये। फिर भी, जिस वन-प्रदेश को अग्नि जला देती है, कुछ समय बाद वहां घासें तो उग ही आती हैं।

'किंतु, शील-संपन्न भिक्षु अपने तेज से जिसे जला देता है उसके पास पुत्र-कलत्र, भाई-बंधु, दोस्त-मित्र, धन-धान्य, पशु-प्राणी आदि कुछ भी नहीं बचता। वह निर्वंश और निर्मूल हो जाता है। इसलिए अपना भला चाहनेवाला व्यक्ति भिक्षु की आयु देखकर 'यह छोटा है' न कहे। पंडित और ज्ञानी लोग इन चारों का तेज देखते हैं। इसी में उनका भला है, कल्याण है। उनको छोटा समझकर कभी भी उनकी उपेक्षा, अवज्ञा

या अपमान नहीं करते।

भगवान की व्याख्या सुनकर प्रसेनजित ने कहा– 'भंते, भगवान ने बहुत ठीक कहा। जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, भटके को राह दिखा दे, ढंके को उघाड़ दे और अंधेरे में तेल का दीपक जला दे कि आंख वाले देख लें। वैसे ही भगवान ने मेरी आंखें खोल दीं। आज से मैं भगवान की शरण जाता हूं, धर्म और संघ की भी। मुझ शरणागत को आजीवन भगवान उपासक स्वीकार करें।'

इस घटना से ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध और धर्म के प्रति प्रसेनजित के मन में जमी काई साफ होने लगी थी। अगले अध्याय में यह बात और स्पष्ट हो जायगी।

अध्याय-3

प्रसेनजित का प्रश्न

शंका समाधान के क्रम में राजा प्रसेनजित के व्यवहार में काफी सुधार हुआ। अब उनके मन में भगवान और धर्म के प्रति संदेह नहीं रहा। या तो जिज्ञासावश या किसी प्रश्न के उत्तर हेतु या समस्या के समाधान के लिए वे भगवान के पास आते। सत्संग या ध्यान के समय उनके मन में उठे विचार का अनुमोदन भी उनका लक्ष्य होता। जैसा कि भगवान ने आनंद से एक प्रसंग में कहा, 'निश्चय ही धर्म के प्रति राजा की प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है।'

पुद्गल (मनुष्य) के चार प्रकार

श्रावस्ती के जेतवन में बैठे प्रसेनजित के मन में मानव-भिन्नता के संबंध में जिज्ञासा उठी– 'भंते, यह संसार विभिन्न प्रकार के मनुष्यों से भरा पड़ा है। कोई उच्चकुलीन तो कोई कुलहीन, कोई समृद्ध तो कोई दरिद्र, कोई सदाचारी तो कोई दुराचारी, कोई सुंदर तो कोई कुरूप.....। भगवन, इस प्रकार कितनी विविधताएं हैं?'

'महाराज, आचार के आधार पर ही इस पूरी विविधता को चार कोटियों में रखा जा सकता है। वे हैं:

१. तम-तम परायणः जो कोई व्यक्ति नीच कुल में पैदा हुआ हो, कुरूप हो, दरिद्र हो और तंगी में जीवन बिता रहा हो। माला-गंध, शैय्या-सवारी की तो बात ही क्या उसे अन्न-पानी मिलना मुश्किल हो। वह शरीर से दुराचारी हो, वचन से दुराचारी और मन से भी दुराचारी। इन कारणों से ऐसा व्यक्ति मर कर बड़ी दुर्गति प्राप्त करता है। महाराज, यह व्यक्ति एक मल के गड्ढे से निकल कर दूसरे मल के गड्ढे में जा गिरता है। ऐसा व्यक्ति तम-तम परायण होता है।

२. **तम-ज्योति परायणः** जो कोई व्यक्ति कुरूप हो, नीच कुल में जनमा हो, लूला-लंगड़ा हो, निर्धन-दरिद्र हो। अन्न-वस्त्र के लिए दूसरों पर मोहताज हो, घर में रोशनी के लिए कुछ प्राप्त न हो। पर, वह शरीर

से सदाचारी हो, वचन से सदाचारी हो और मन से भी सदाचारी हो। वह अपने सदाचार के कारण मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होता है। महाराज, जैसे कोई व्यक्ति जमीन से घोड़े की पीठ पर और घोड़े की पीठ से महल पर चढ़ जाय वैसे ही, यह व्यक्ति अंधकार से प्रकाश में प्रवेश करता है। ऐसा व्यक्ति तम-ज्योति परायण होता है।

३. **ज्योति-तम परायणः** कोई व्यक्ति अच्छे कुल में उत्पन्न है, सुंदर है, स्वस्थ है, संपन्न है। तरह-तरह की भोगसामग्री से युक्त है। पर, वह शरीर से दुराचार करता है, वचन से दुराचार करता है और मन से भी दुराचार करता है। इन दुराचारों के कारण वह मर कर दुर्गति प्राप्त करता है। यह व्यक्ति महल से घोड़े पर और घोड़े से जमीन पर जा गिरता है। महाराज, यह व्यक्ति ज्योति-तम परायण होता है।

४. **ज्योति-ज्योति परायणः** कोई व्यक्ति ऊंचे कुल में उत्पन्न है, स्वस्थ और सुंदर है, समृद्ध है, तरह-तरह के भोगों से युक्त है। वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से सदाचार करता है और मन से सदाचार करता है। महाराज, ऐसा व्यक्ति मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। जैसे, कोई व्यक्ति घोड़े की पीठ से महल पर चढ़ जाय। यह व्यक्ति प्रकाश से चलकर प्रकाश में प्रवेश करता है। ऐसा व्यक्ति ज्योति-ज्योति परायण होता है।

'महाराज, जैसे कुशल-अकुशल कर्मों के आधार पर मनुष्यों की कोटियां हैं, वैसे ही श्रद्धा, धर्म, दान, आस्तिकता आदि के आधार पर भी मनुष्यों की विभिन्न कोटियां हैं।'

श्रेष्ठ वर्ण कौन?

प्रसेनजित कोशल ने पूछा– 'भंते, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र– इन चारों वर्णों में क्या आपस में कोई अंतर है? क्या इनमें कोई श्रेष्ठ और कोई हीन है?'

'महाराज, इन चारों वर्णों में अभिवादन, अंजलिबद्ध प्रणाम आदि के संबंध में दो वर्ण–क्षत्रिय और ब्राह्मण–श्रेष्ठ कहे जाते हैं।'

'भंते, मैं इस जन्म के संबंध में नहीं पूछ रहा हूं, बल्कि मैं परलोक के संबंध में पूछ रहा हूं।'

'महाराज, ये पांच प्रधान अंग हैं– श्रद्धा, निरोगिता, अशठता (मायावी न होना), उद्योग एवं प्रज्ञा। इन पांचों अंगों से युक्त व्यक्ति, भले ही विभिन्न वर्णों के हों' उनमें आपस में कोई भेद नहीं है।'

अपने कथन को और स्पष्ट करने के लिए, भगवान ने अग्नि और काठ का दृष्टांत राजा के सामने रखते हुये उन्हीं से प्रश्न किया– 'महाराज, एक व्यक्ति साखू की लकड़ी से आग जलाता है, एक आम की लकड़ी से आग जलाता है और एक गूलर की लकड़ी से। क्या इन तीन प्रकार की लकड़ियों से तैयार की गयी अग्नि का आपस में– लौ का लौ से, रंग का रंग से और आभा का आभा से– कोई भेद होगा?'

'नहीं भंते, ऐसा नहीं होगा।'

'ठीक ऐसे ही महाराज, पांचों प्रधान अंगों से संपन्न व्यक्ति चाहे जिन वर्णों के हों उनमें आपस में कोई भेद नहीं होगा।'

सहर्ष महाराज ने भगवान के कथन का अनुमोदन किया।

मनचाही से प्रीत

एक बार कोशलनरेश चार मित्र राजाओं के साथ अपने महल में बैठे थे। बातचीत के बीच पांच कामगुणों के भोग की चर्चा चल पड़ी। प्रश्न उठा कि इन पांचों कामगुणों– रूप, शब्द, रस, गंध और स्प्रष्टव्य में कौन सबसे बढ़िया है? इस विषय में प्रत्येक का विचार दूसरे से भिन्न था। पांचों राजा एक निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे थे। वे आपस में एक-दूसरे को अपनी बात नहीं समझा सके।

प्रसेनजित कोशल ने उन राजाओं से कहा– 'क्यों न हमलोग भगवान के पास चलें? इस विषय में उनसे पूछा जाय। जैसा भगवान बतावें वैसा हमलोग समझें और उसे स्वीकार करें।'

'बहुत अच्छा', कहते हुये उन राजाओं ने प्रसेनजित का सुझाव मान लिया। प्रसेनजित सहित पांचों राजा भगवान के पास पहुंचे और उनका यथोचित अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। कोशलराज ने अपनी बात भगवान से कही– 'भंते, हम पांच राजाओं के बीच पांचों कामगुणों का

भोग करते हुये यह बात चली कि इन पांचों कामगुणों में सबसे बढ़िया कौन है? इस विषय पर हमलोग एकमत नहीं हो पाये। किसी को रूप पसंद है तो किसी को शब्द, किसी को गंध पसंद है तो किसी को रस और किसी को स्प्रष्टव्य ही। भंते, अब भगवान बतावें कि इन कामगुणों में सबसे अच्छा कौन है?'

भगवान ने कहा– 'महाराज, इन पांचों कामगुणों में जिसको जो पसंद हो उसके लिए वही बढ़िया है। जो रूप एक के लिए अति प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिए अति अप्रिय हो सकता है। जिस रूप से कोई एक संतुष्ट हो जाता है, उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, उस रूप से बढ़-चढ़ कर भी दूसरा रूप उसे नहीं सुहाता। वे रूप उसके लिए अनोखे और सर्वोत्तम होते हैं। ऐसे ही महाराज, शब्द, रस, गंध और स्प्रष्टव्य कामगुणों के बारे में समझें। जिसको जो अच्छा लगे उसके लिए वही अच्छा।'

कोशलनरेश सहित उन पांच राजाओं तथा वहां उपस्थित अन्य उपासकों ने भगवान के इस कथन की प्रसन्न चित्त से प्रशंसा की। पांचों राजाओं ने भगवान की सेवा में पांच वस्त्र भी अर्पित किये।

निर्लोभी कितने?

एक बार कोशलराज प्रसेनजित ने भगवान से कहा– 'भंते, आज ध्यान के समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि संसार में निर्लोभी कितने लोग होंगे? भगवन, मुझे ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े से लोग ही ऐसे हैं।'

'महाराज, कैसे?

'भंते, जो बड़े-बड़े भोग पाकर मस्त न हो जाते हों, मतवाले न हो जाते हों, सुध-बुध न खो बैठते हों संसार में ऐसे लोग बहुत कम हैं। संसार में ऐसे लोग बहुत हैं जो बड़े-बड़े भोग पाकर दूसरों के साथ अनाचार करने लगते हैं, दुराचार करने लगते हैं।'

'महाराज, वास्तव में ऐसी ही बात है। संसार में बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो बड़े-से-बड़ा भोग पाकर भी मतवाले न हो जाते हों, मस्त न हो जाते हों...।'

महाराज के कथन का अनुमोदन करते हुये आगे भगवान ने कहा–

'कामभोगों में आसक्त लोग अंधे होकर किसी भी सीमा की परवाह नहीं करते। जैसे, मृग के लिए बिछाये गये जाल का फल कड़ुवा होता है, वैसे ही कामभोगों के फल दुःखद होते हैं।'

किसको दान देने से महाफल?

'भंते, किसको दान देना चाहिये?' प्रसेनजित ने भगवान से पूछा।

'महाराज, जिसके प्रति मन में श्रद्धा हो।'

'भगवन, किसको दान देने से महाफल प्राप्त होता है?'

'महाराज, दान किसको दें और किसे दान देने से महाफल प्राप्त होता है, ये एक नहीं दो प्रश्न हैं। शीलसंपन्न व्यक्ति को दिये गये दान का महाफल होता है।'

भगवान ने एक दृष्टांत से अपने उत्तर को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा, 'महाराज, मान लीजिये आपके राज्य में कहीं युद्ध छिड़ गया। ऐसे में क्या आप किसी ऐसे क्षत्रिय कुमार को सेना में भर्ती करेंगे जिसने न युद्ध विद्या सीखी हो, न युद्धाभ्यास किया हो, जो कायर हो, डरपोक हो, डर से भाग जानेवाला हो। क्या ऐसे व्यक्ति से आपके उद्देश्य की पूर्ति होगी?'

'नहीं भंते, उस व्यक्ति को मैं कभी नहीं नियुक्त करूंगा। उससे मेरा कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।'

'ऐसे ही कोई ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र कुमार आये तो?'

'उसे भी नहीं, मुझे तो योद्धा चाहिये।'

'अच्छा महाराज, मान लें कि आपके यहां युद्ध छिड़ गया। अब कोई ऐसा क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र कुमार आये जिसने युद्ध विद्या अच्छी तरह सीखी हो, जो युद्ध कार्य में अभ्यस्त हो, जो न कायर हो, न डरपोक हो, जो साहसी और हिम्मती हो तो क्या आप उसे नियुक्त कर लेंगे?'

'अवश्य भंते, ऐसे व्यक्ति को मैं नियुक्त करूंगा। वही हमारे काम का होगा। मुझे जाति-वर्ण नहीं देखना है।'

'महाराज, ठीक उसी तरह चाहे जिस कुल से प्रव्रजित हुआ व्यक्ति,

यदि पांच अंगों से रहित और पांच अंगों से युक्त हो तो उसे दान देने का महाफल होता है। वह राग, द्वेष, आलस्य, उद्वेग-खेद और शंका इन पांच अंगों से रहित हो, और शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति और विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन इन पांच अंगों से युक्त हो।'

निष्कर्षस्वरूप भगवान ने आगे कहा–

'जिस प्रकार तीरंदाज, साहसी और बलवीर्ययुक्त युवक को राजा युद्ध के लिए सेवा में नियुक्त करते हैं, जाति के कारण नहीं, उसी प्रकार क्षमाशील, प्रज्ञावान और धार्मिक व्यक्ति को पंडित लोग दान देकर महाफल प्राप्त करते हैं, भले ही वह व्यक्ति हीन जाति में ही क्यों न पैदा हुआ हो।'

किसको अपने से प्यार?

जिस प्रकार मन में उठे प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए राजा भगवान के पास जाते थे, उसी प्रकार ध्यान के समय उठे विचारों को भी बताने के लिए वे शास्ता के यहां पहुंच जाते थे। बड़े ही ध्यान से भगवान उनकी बातों को सुनते और अनुमोदन भी करते।

प्रसेनजित कोशल ने भगवान से कहा– 'भंते, आज ध्यान करते समय मेरे मन में यह विचार उठा कि किनको अपने से प्यार है और किनको अपने से प्यार नहीं है। तब मेरे मन में यह हुआ कि जो शरीर से दुराचार करते हैं, वाणी से दुराचार करते हैं और मन से दुराचार करते हैं उनको अपने से प्यार नहीं है। यदि वे ऐसा कहें भी कि उन्हें अपने से प्यार है तो भी सचमुच उन्हें अपने से प्यार नहीं है।'

'सो कैसे, महाराज?'

'भंते, जो शत्रु शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं। यदि उनको अपने से प्यार होता तो क्या वे शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते?'

प्रसेनजित कोशल ने कहना जारी रखा– 'भगवन, जो शरीर से सदाचार करते हैं, वाणी से सदाचार करते हैं और मन से सदाचार करते हैं उनको अपने से प्यार है। यदि वे ऐसा कहें भी कि उन्हें अपने से प्यार नहीं है तो भी सचमुच उन्हें अपने से प्यार है।'

'सो कैसे, महाराज?'

'जो मित्र, मित्र के प्रति करता है वही अपने प्रति आप करते हैं। यदि उनको अपने प्रति प्यार नहीं होता तो वे शरीर, वाणी और मन से सदाचार नहीं करते।'

'हां महाराज, ऐसी ही बात है। जो मन से, वचन से और काया से दुराचार करते हैं, उन्हें अपने से तनिक भी प्यार नहीं है। पर, जो मन से, वचन से और काया से सदाचार करते हैं, उन्हें अपने से बड़ा ही प्यार है। जिसे अपने से प्यार है वह अपने को पाप में न लगावे।'

इस प्रकार महाराज के विचारों का अनुमोदन करते हुये भगवान ने एक गाथा कही जिसका अर्थ निम्नलिखित है–

'शरीर को छोड़कर जाने वाला मनुष्य भला क्या लेकर जाता है! यहां पर किये गये पुण्य-पाप ही उसके अपने हैं, जो साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह उसके साथ जाते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह कुशल कर्मों द्वारा अपना कल्याण करे।'

अपना रक्षक कौन?

ध्यान के पश्चात कोशल प्रसेनजित भगवान के पास पहुंचे। भगवान ने प्रश्नात्मक मुद्रा में उनकी ओर देखा।

'भंते, किन लोगों ने अपनी सुरक्षा कर ली है और किन लोगों ने अपनी सुरक्षा नहीं कर ली है?'

'महाराज, आपने क्या सोचा?'

'भगवन, मेरे मन में यह हुआ कि जो लोग शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं और मन से दुराचार करते हैं, उन्होंने अपनी सुरक्षा नहीं की। भले ही उनकी रक्षा के लिए हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सेना तैनात हो। उन्होंने अपने को असुरक्षित ही रखा है।'

'महाराज, वह कैसे?'

'वह तो उनकी केवल बाहरी रक्षा हुयी, आंतरिक नहीं। इसलिए वे अरक्षित ही रह गये। पर, जो शरीर से सदाचार करते हैं, वचन से सदाचार करते हैं और मन से सदाचार करते हैं, उन्होंने अपनी रखवाली अच्छी तरह कर ली है। भले ही उनके लिए चतुरंगिणी सेना तैनात न

हो। वे अरक्षित नहीं बल्कि सुरक्षित हैं। बाहर की नहीं पर उनकी आंतरिक रक्षा हो गयी। वे पूरे सुरक्षित हैं।'

महाराज के विचार का अनुमोदन भगवान ने एक गाथा से किया जिसका अर्थ निम्नलिखित है।

'शरीर का संयम ठीक है, वाणी का संयम ठीक है, मन का संयम ठीक है और सभी का संयम ठीक है। पूर्ण संयमी और लज्जावान ने अपनी रक्षा अच्छी तरह से कर ली है।'

तीन अहितकर धर्म

श्रावस्ती में भगवान के पास एक ओर बैठे प्रसेनजित ने पूछा, 'भंते, संसार में कितने धर्म ऐसे हैं जो मनुष्य के लिए अहितकर हैं और उनसे कष्ट तथा दुःख उत्पन्न होते हैं।'

'महाराज, तीन धर्म ऐसे हैं जो मनुष्य के लिए अहितकर हैं और उनसे कष्ट तथा दुःख उत्पन्न होते हैं।'

'भंते, वे कौन-कौन से हैं?'

'महाराज, ये तीन हैं– राग, द्वेष और मोह। ये तीनों मनुष्यों के कष्ट दुःख और अहित के लिए उत्पन्न होते हैं। इनमें भी प्रमुख है मोह। मोह ही राग और द्वेष का मूल है। मोह ही अज्ञान है, अविद्या है।'

एक दृष्टांत द्वारा भगवान ने समझाया–

'महाराज, जिसके चित्त में पाप होता है उसके भीतर ये तीनों धर्म उत्पन्न होकर उसका सर्वनाश कर डालते हैं। जैसे केले का फल केले के पौधे को नष्ट कर डालता है।'

अप्रमाद के गुण

कोशलनरेश ने भगवान से पूछा– 'भंते, क्या कोई ऐसा धर्म भी है जो लोक और परलोक दोनों के लिए उपयोगी और आवश्यक ठहरता हो?'

'हां महाराज, है ऐसा धर्म।'

'भंते, कौन सा?'

'महाराज, अप्रमाद। यह लोक-परलोक दोनों में ही समान रूप से आवश्यक एवं उपयोगी ठहरता है।'

हाथी के पैर का दृष्टांत देते हुये भगवान ने समझाया। जैसे हाथी के पैर में सभी के पैर समा जाते हैं, वैसे ही इस एक धर्म में दोनों लोकों की बातें आ जाती हैं।

'महाराज, अप्रमाद दोनों ही लोकों के लिए समान रूप से उपयोगी है। इससे आयु, निरोगिता, वर्ण, स्वर्ग, कुलीनता और सुख सबमें वृद्धि होती है। पुण्य कर्मों में पंडित अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं। अप्रमत्त लोक और परलोक दोनों ही अर्थों को प्राप्त कर लेता है।'

संत धर्म न होय पुराना

संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है जो कालचक्र में पड़कर पुराना न हो जाता हो। पर, शायद कुछ है जो कभी पुराना न पड़े। इसी जिज्ञासावश कोशल प्रसेनजित ने भगवान से जानना चाहा– 'भंते, क्या संसार में ऐसा कुछ है जो जन्म तो लेता हो, पर न पुराना होता हो, न ही मरता हो?'

'महाराज, संसार में ऐसा कुछ नहीं है जो जन्म तो लेता हो, पर न पुराना होता हो, न ही मरता हो।'

'ऊंचे से ऊंचे क्षत्रिय परिवार के, ब्राह्मण परिवार के धनाढ्य, शक्तिशाली, सोना-हीरा-धन-धान्य-संपन्न, विपुल वित्त एवं उपकरण-युक्त लोग भी जन्म लेकर बूढ़े हुये और मरे बिना नहीं रहते।'

'महाराज, जो अर्हत्व को प्राप्त हो चुके हैं– क्षीणाश्रव हो चुके हैं, कृतकृत्य हो गये हैं, परमार्थ को प्राप्त हो चुके हैं, बंधनमुक्त हो गये हैं, परम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं– उनका शरीर भी पुराना होकर छूट जाता है और बेकार हो जाता है। महाराज के रथ की तरह यह शरीर भी बुढ़ापे को प्राप्त होता है और नष्ट हो जाता है।

'किंतु महाराज, संतों का धर्म न पुराना होता है और न नष्ट होता है, न ही समाप्त होता है। केवल संत धर्म ही जरा-मरण रहित होता है।'

अव्याकृत क्यों?

कोशलराज प्रसेनजित साकेत से श्रावस्ती आते हुए तोरणवस्तु में एक रात के लिए रुक गये। उनके मन में सत्संग की इच्छा हुयी। उन्होंने अपने एक राजसेवक को इस बात का पता लगाने के लिए भेजा कि वहां कोई श्रमण या ब्राह्मण है जिनके साथ सत्संग किया जा सके। सेवक ने आकर महाराज से बताया कि कोई श्रमण या ब्राह्मण तो नहीं हैं पर खेमा नाम की एक भिक्षुणी यहां ठहरी हैं। वे भगवान सम्यकसंबुद्ध की श्राविका हैं। वे विदुषी, मेधाविनी एवं सूझ-बूझ-संपन्न हैं।

राजा श्राविका खेमा भिक्षुणी के पास गये और यथोचित अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। अनुमति पाकर भिक्षुणी से प्रश्न किया– 'आर्ये, क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं?'

'महाराज, भगवान ने इस प्रश्न को अव्याकृत (जिसका उत्तर हां या ना में न दिया जा सके) बताया है।'

'आर्ये, क्या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं?'

'महाराज, इसे भी भगवान ने अव्याकृत बताया है।'

आगे राजा ने दो प्रश्न और किये– 'क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं और नहीं भी रहते हैं तथा क्या तथागत मरने के बाद न तो रहते हैं, न नहीं रहते हैं?'

भगवान के बताये अनुसार खेमा ने इन दोनों प्रश्नों को भी अव्याकृत ही कहा। इस पर राजा प्रसेनजित ने यह जानना चाहा कि क्या कारण है कि भगवान ने इन सभी प्रश्नों को अव्याकृत ही बताया है।

महाराज के प्रश्नों का उत्तर खेमा ने प्रश्न से ही देना चाहा। उन्होंने पूछा– 'महाराज, क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो गंगा के बालूकणों को गिनकर यह बता सके कि वे इतने हैं– इतने सौ, इतने हज़ार, इतने लाख, इतने करोड़.....हैं।'

'नहीं आर्ये, यह कैसे संभव है?'

'अच्छा महाराज, क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो महासागर के जल को तौलकर यह बता सके कि वह इतने आल्हक (उस समय का एक तौल माप)– इतने सौ, इतने हज़ार, इतने लाख, करोड़ आल्हक.....है।'

'आर्ये, यह भी संभव नहीं है।'

'महाराज, यह क्यों संभव नहीं है?'

'आर्ये, समुद्र गंभीर है, अथाह है। उसे तौला नहीं जा सकता।'

'महाराज, ऐसा ही तथागत के बारे में कहा जा सकता है। तथागत का वह रूप नष्ट हो चुका, निर्मूल हो गया, मिट गया और भविष्य में न उत्पन्न होने योग्य बना दिया गया। यह रूप और वह रूप, होने और न होने जैसे प्रश्नों से तथागत मुक्त हो गये हैं; गंभीर, अप्रमेय और अथाह! जैसे महासागर के विषय में नहीं कहा जा सकता है, वैसे तथागत के विषय में भी ये चार बातें नहीं कही जा सकती हैं– 'तथागत मरने के बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं, रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं तथा न तो रहते हैं, न नहीं रहते हैं।'

आगे खेमा ने बताया कि ऐसे ही तथागत के विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार के बारे में भी नहीं कहा जा सकता है।

श्राविका खेमा के उत्तर से संतुष्ट, उनका अभिनंदन करके राजा प्रसेनजित उन्हें प्रणाम कर वहां से चले गये।

क्या देव मानवलोक में जन्म लेते हैं?

प्रसेनजित की जिज्ञासा की सीमा कुछ आगे बढ़ी। मानवलोक के बाहर के प्राणियों के बारे में भी उन्हें कुछ जानने की इच्छा हुयी।

– 'भंते, क्या देवता मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करते हैं?'

'महाराज, जो देव लोभ से युक्त हैं वे मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। पर, जो देवता लोभरहित हैं वे मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण नहीं करते।'

कोशलराज प्रसेनजित के साथ उनका पुत्र बिटटूभ भी था। उसने पूछा– 'भंते, जो देवता लोभ-रहित हैं और मनुष्य-लोक में जन्म नहीं लेते क्या वे अपने स्थान से च्युत होंगे?'

राजा के पुत्र बिटटूभ के प्रश्न का उत्तर भगवान के धर्म-पुत्र आनंद ने प्रश्न से ही दिया– 'सेनापति, जहां तक राजा प्रसेनजित का राज्य है, शासन है, क्या वहां के निवासियों को राजा हटा या निकाल सकते हैं?'

'हां भंते, जहां तक राजा प्रसेनजित का शासन है वहां के लोगों को राजा निकाल या हटा सकते हैं।'

'और जहां राजा प्रसेनजित का शासन नहीं है, वहां के निवासियों को क्या वे निकाल या हटा सकते हैं?'

'नहीं भंते, ऐसा वे नहीं कर सकते।'

'सेनापति, क्या आपने और महाराज ने त्रयस्त्रिंश देवलोक का नाम सुना है?'

'सुना है, भंते।'

'क्या यह संभव है कि कोशलराज त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को वहां से निकाल या हटा सकें?'

'भंते, लोभरहित देवों को तो राजा देख भी नहीं सकते हैं, उन्हें निकाल या हटा कैसे पायेंगे?'

'तो ऐसा ही समझो सेनापति, जो देवता लोभयुक्त हैं वे मानवलोक में आते हैं और जो लोभरहित हैं, उन्हें देखा भी नहीं जा सकता। कैसे उस स्थान से उन्हें निकाला या हटाया जाय?'

आनंद का उत्तर सुनकर राजा प्रसेनजित कोशल बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आनंद की प्रशंसा की। फिर देवों जैसा ही प्रश्न ब्रह्मा के बारे में पूछ बैठा कि 'क्या ब्रह्मा मनुष्यलोक में आते हैं?'

मानवलोक में ब्रह्मा के जन्म के बारे में भगवान ने देवों की ही भांति लोभ को मूल कारण बताया।

भगवान के उत्तर से राजा अति प्रसन्न हुए। उन्होंने संतोष का अनुभव किया। भगवान से अपनी प्रसन्नता और संतोष का उल्लेख कर उनका अभिवादन किया।

अध्याय-४

कोशलराज ने उपदेश कहा

पीछे के प्रसंगों में यह देखा गया कि शंकालु राजा प्रसेनजित भगवान बुद्ध और धर्म के प्रभाव से जिज्ञासु होते गये। आगे की घटनायें यह दर्शाती हैं कि वे कितने मनोयोग से भगवान के उपदेशों को, निर्देशों को सुनने लगे, उन्हें ग्रहण करने लगे और व्यावहारिक रूप में उनका पालन भी करने लगे।

सम्यक आहार

ऐसा लगता है प्रसेनजित को बहुत खाने की आदत थी। उसके लिए यह प्रचलित था कि द्रोण (तौल का एक माप) भर भात और उसके अनुरूप सूप और तरकारी खाया करता है। एक बार युद्ध में अजातशत्रु द्वारा हराये जाने पर भिक्षुओं ने आपस की चर्चा में उन्हें 'लोभी, पेटू और हांड़ी भर भात को गंदा करने वाला' कहा। जब एक भयानक स्वप्न देख कर वे डर रहे थे तब उनकी महारानी मल्लिका देवी ने भी उन्हें 'अनेक प्रकार के व्यंजनयुक्त द्रोण भर भोजन करनेवाला महाभक्षक' कहा था। उनका नाश्ता भी गंभीर होता था। अधिक भोजन के फलस्वरूप उनका आलस्य और तंद्रा में भी पड़ जाना स्वाभाविक था। ऐसा लगता है कि किसी ने उन्हें अधिक खाने के दोषों के प्रति सचेत नहीं किया था। वे किसी की सुनते भी तो नहीं थे।

ऐसे ही अधिक भोजन करके एक दिन वे शास्ता के पास गये। अधिक भोजन से उत्पन्न तंद्रा के कारण वे भगवान को विधिवत (पंचांग) नमन भी न कर सके। आलस्य और निद्रा से अभिभूत वे एक ओर बैठ गये। उनकी यह हालत देखकर भगवान ने पूछा– 'महाराज, क्या आज विश्राम किये बिना ही आ गये हैं?'

'हां भंते, भोजन करने के बाद से ही बड़ा कष्ट हो रहा है।'

'महाराज, बहुत ज्यादा खा लेने पर ऐसा ही होता है।' आगे भगवान ने अधिक आहार के दोष बताये–

'जो कोई भुक्खड़ सूअर की तरह अधिक आहार करके आलस्य में लोट-पोट करता रहता है, वह बार-बार गर्भ में पड़कर जन्म लेता रहता है।'

फिर भगवान ने समझाया– 'महाराज, मित प्रमाण में भोजन करना चाहिये। मित भोजन से ही आदमी को सुख मिलता है। मित भोजन लाभकारी होता है।'

शास्ता ने उपदेश किया–

'हमेशा होश में रहनेवाले को और प्राप्त भोजन में मात्रा जाननेवाले को कष्ट कम होता है। उसकी आयु धीरे-धीरे क्षीण होती है।'

भगवान का उपदेश राजा को जंच गया। पर वे गाथा नहीं सीख सके। पास में खड़े अपने भांजे सुदर्शन माणवक को उन्होंने गाथा सीखने के लिए कहा। शास्ता ने सुदर्शन को गाथा के उपदेश को व्यवहार में लाने की विधि भी बतायी– 'राजा के भोजन करते समय उनके अंतिम कौर के वक्त गाथा को कहना। गाथा के अर्थ पर ध्यान देकर राजा जिस कौर को फेंकेगा, उस कौर के भात-कणों की गिनती करवा के राजा के भात पकाते समय उतने चावल निकलवा लेना।'

शास्ता के उपदेशानुसार सुदर्शन वैसा ही करता। कुछ दिनों बाद राजा का शरीर सुडौल और गठीला हो गया। अपने गालों पर हाथ फेरते हुये राजा के मुंह से उदान के ये शब्द निकल पड़े :

'भगवान ने दोनों तरह से मुझ पर अनुकंपा की है–

इस लोक की बातों में और परलोक की बातों में भी।'

भांजे सुदर्शन द्वारा प्राप्त सेवा के लिए राजा ने उसे एक हजार स्वर्ण मुद्राओं से पुरस्कृत किया। फिर एक दिन शास्ता के पास जाकर उनकी वंदना करके कहा– 'भंते, अब मैं स्वस्थ और सुखी हूं। हिरण या घोड़े का पीछा करके उसे पकड़ने में समर्थ हो गया हूं।'

राजा के कथन का अनुमोदन करते हुये भगवान ने कहा– 'महाराज, आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है।'

सम्यक विहार

शास्ता से धर्मदेशना सुनने के बाद राजा ने कहा– 'भंते, भगवान ने धर्म को बड़े अच्छे ढंग से समझाया। पर, वह भले लोगों के संग रहनेवालों के लिए ही है। बुरे लोगों की संगत से वह धर्म प्राप्त नहीं हो सकता।'

'हां महाराज, संगति का बड़ा ही प्रभाव पड़ता है।'

इसी प्रसंग में भगवान ने आनंद से संबंधित एक घटना सुनायी। उस समय भगवान शाक्य जनपद के एक कस्बे में विहार करते थे। वहीं आनंद आये और भगवान का अभिवादन करके बैठ गये। उन्होंने भगवान से कहा– 'भंते, करीब आधा ब्रह्मचर्य तो भले लोगों के संग रहने से ही प्राप्त हो जाता है।'

'इतना ही नहीं आनंद, पूरा ब्रह्मचर्य ही भले लोगों की संगति पर टिका हुआ है। भले लोगों के साथ रहनेवाले व्यक्ति से ही आर्य अष्टांगिक मार्ग के विधिवत सेवन और अभ्यास की आशा की जा सकती है।

'भलों की संगति से ही व्यक्ति सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि (प्रज्ञा, शील और समाधि) की भावना कर सकता है। इस प्रकार यह भलीभांति समझो कि ब्रह्मचर्य पूर्णतया भले लोगों की संगति पर ही आधारित है।'

आगे आनंद को समझाते हुये भगवान ने कहा कि भले मित्र के साथ रहकर जन्म लेनेवाले प्राणी जन्म से मुक्त हो जाते हैं, बूढ़े होनेवाले बुढ़ापे से मुक्त हो जाते हैं, व्याधिग्रस्त होनेवाले प्राणी व्याधि से मुक्त हो जाते हैं, क्षीण होनेवाले क्षय से, शोक करनेवाले शोक से, बेचैन रहनेवाले बेचैनी से....मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह जान लो कि भलों की संगति मनुष्य के लिए मुक्तिदायक है।

फिर कोशलनरेश से भगवान ने कहा– 'इसलिए महाराज, आप भी यही सीखें। भले लोगों से मिलें-जुलें, उनके साथ रहें। इस प्रकार आप कुशल धर्मों में प्रमादरहित होकर रहना सीखेंगे। आपके अप्रमादपूर्वक विहरने का प्रभाव आपकी रानियों पर पड़ेगा। वे प्रमादरहित होकर विहार करेंगी। महाराज, राजा-रानी के प्रमादरहित होकर विहरने का प्रभाव आपके अमात्य और अधीनस्थ सेवकों पर पड़ेगा, वे भी अप्रमादपूर्वक

विहार करेंगे। ऐसे ही महाराज, नगर, गांव, राज्य की जनता-प्रजा भी आपसे, रानियों से, अमात्यों-सेवकों से प्रभावित होकर प्रमादरहित होकर विहार करेगी।

'महाराज, इस प्रकार आपके अप्रमादपूर्वक विहार करने से आप स्वयं, रानियां, अमात्य, सेवक, आपकी प्रजा, जनता, आपका खजाना-भंडार सबकुछ संयत रहेगा।'

निष्कर्ष में भगवान ने गाथा कही जिसका अर्थ निम्नलिखित है–

'अधिकाधिक भोगों की कामना– करनेवालों के लिए पंडित लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं। अप्रमत्त पंडित, लोक और परलोक दोनों के ही अर्थों को प्राप्त करते हैं। धीर पुरुष अपने अर्थ को समझते हैं, इसलिए वे पंडित कहे जाते हैं।'

पुत्री-महिमा

श्रावस्ती के जेतवन आराम में प्रसेनजित भगवान के पास बैठे थे। उसी समय एक राजपुरुष आया। उसने राजा के कान में फुसफुसा कर कहा कि मल्लिका देवी ने पुत्री को जन्म दिया है। उसके ऐसा कहने पर कोशलराज का चेहरा उतर गया। वे उदास हो गये। भगवान उनके मन के भाव को ताड़ गये। राजा को समझाते हुये भगवान के मुंह से गाथायें निकलीं जिनका अर्थ निम्नलिखित है–

'महाराज, कोई-कोई स्त्री भी पुरुषों से अधिक बुद्धिमती, शीलवती और बढ़-चढ़ कर होती है। वह सास की सेवा करनेवाली और पतिव्रता होती है। उससे दिग्विजयी शूरवीर पैदा होते हैं। ऐसी भाग्यशालिनी स्त्री का पुत्र राज्य पर शासन करता है।'

सभी चमकीले सोना नहीं

एक बार मिगारमाता के पूर्वाराम में भगवान विहार कर रहे थे। कोशलनरेश प्रसेनजित कुछ उपासकों के साथ शास्ता के सामने बैठे थे। उसी समय राजा ने जटाधारी, निर्ग्रंथ, एक वस्त्रधारी आदि पांच विभिन्न संप्रदायों के सात-सात साधुओं को पास से ही गुजरते हुये देखा। कोशलराज अपने आसन से उठे और उन साधुओं के प्रति सम्मान भाव से पृथ्वी पर अपने दोनों घुटने टेक कर अपना नाम बताते हुये तीन बार

उन्हें प्रणाम किया। उन साधुओं के चले जाने के बाद राजा भगवान के पास आकर पुनः बैठ गये और बोले– 'भंते, संसार में जो अर्हत हैं या अर्हत मार्ग पर आरूढ़ हैं, ये साधु लोग उनमें से हैं।'

प्रसेनजित के कथन से असहमत होते हुये भगवान ने कहा– 'महाराज, ये गृहस्थ, कामभोगों में लिप्त, बालबच्चेदार, धन-वैभव के पीछे रहनेवाले, माला-गंध-उबटन का सेवन करनेवाले, काशी का चंदन लगानेवाले हैं। इन्हें आपने उल्टा समझ लिया। न तो ये अर्हत हैं, न ही अर्हत मार्ग पर आरूढ़ हैं।'

आगे शास्ता ने किसी को परखने की कुछ विधियां बतायीं– 'महाराज, किसी के साथ रहने से ही उसके शील का पता लगाया जा सकता है, वह भी बहुत दिनों तक, ध्यानपूर्वक और बुद्धिमानी से उसकी गतिविधियों को देखकर। व्यवहार करने पर ही किसी की ईमानदारी का पता चल सकता है, वह भी ध्यानपूर्वक, बुद्धिमानी से और बहुत दिनों के बाद। ऐसे ही महाराज, विपत्ति में किसी के धैर्य का और बात-व्यवहार से किसी की प्रज्ञा का पता चलता है। केवल ऊपर-ऊपर देखकर किसी की वास्तविकता को नहीं जाना जा सकता।'

'भंते, आप धन्य हैं। भगवान ने इसे अच्छी तरह समझा दिया। मैं गृहस्थ-भोगी, सचमुच मैंने उल्टा समझ लिया। किसी के साथ रहने से उसके शील की, व्यवहार करने से ईमानदारी की, विपत्ति में धैर्य और वार्तालाप से प्रज्ञा का पता लगाया जा सकता है। भगवन, ये सब तो गुप्तचर हैं और ढोंग बना-बना कर किसी का भेद लेने के लिए घूमते हैं। अब ये अपने भस्म-भभूत, उबटन आदि धोकर, बाल-नाखून कटवाकर, उजले वस्त्र धारण कर पांच कामगुणों का सेवन करेंगे।' राजा द्वारा अनुमोदन किये जाने पर भगवान ने गाथा कहकर उपदेश किया। गाथा का अर्थ निम्नलिखित है– 'किसी के ऊपरी रंग-रूप से उसे नहीं जाना जा सकता। केवल देखकर किसी पर विश्वास न करें। ऊपरी वेश और संयम बनाकर लोग घूमते रहते हैं। पानी चढ़ाये हुये नकली कुंडल को कोई उसकी चमक से सोना न समझे।'

मक्खीचूस की गति

यह जानकर कि लावारिस की संपत्ति राज्य की होती है, कोशलनरेश ने लावारिस श्रेष्ठी की सारी संपत्ति राजकोष में मंगवा ली। दूसरे दिन

दोपहर को वे भगवान के पास पहुंचे और पूरा हाल कह सुनाया– 'भंते, उस निपूते की संपत्ति को राजकोष तक लाने में पूरे सात दिन लगे। और सबकी तो बात ही क्या उसके पास सौ लाख स्वर्ण मुद्रायें थीं। अपार संपत्ति के बावजूद भगवन, न तो वह स्वयं ठीक से खाता था, न खाने देता था, न ही किसी को खिलाता था। वह न तो कायदे का वस्त्र पहनता था, न कायदे से आता-जाता था और न ही कायदे से रहता था। किसी को कभी भी कुछ दान-दक्षिणा भी नहीं देता था। वह महानीच दरिद्र का-सा जीवन जीता था।'

राजा के कथन से सहमति व्यक्त करते हुये भगवान ने कहा– 'महाराज, ऐसी ही बात है। नीच व्यक्ति बहुत-सा धन पाकर भी उससे सुख नहीं उठा पाता है। न तो मां-बाप को सुख देता है, न बाल-बच्चों को सुख देता है, न नौकर-चाकर को सुख देता है, न भाई-बंधु को, न दोस्त-मित्र को..... न श्रमण-ब्राह्मण को दान-दक्षिणा ही देता है जिससे अच्छी गति प्राप्त हो। इस प्रकार उसके बिना भोग किये, बिना दान दिये, धन का एक तरह से विनाश ही होता है। ऐसे संचित धन को या तो चोर ले जाते हैं, या आग जला देती है, या पानी बहा ले जाता है, या फिर वह धन अप्रिय व्यक्तियों के हाथ लग जाता है। हां, कभी-कभी उसे राजा भी ले जाते हैं।'

अपने कथन को एक दृष्टांत द्वारा भगवान ने और स्पष्ट किया– 'महाराज, जैसे एक बावली हो, साफ और रमणीय घाटोंवाली। उसका जल स्वच्छ, निर्मल, शीतल एवं स्वास्थ्यकर हो। पर वह किसी निर्जन स्थान में हो जिससे उसके जल का उपयोग मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी न कर पाते हों। न तो कोई पानी ले जाता हो, न पीता हो, न उससे स्नान करता हो, न किसी और ही कार्य में लगता हो। इस प्रकार इस बावली का पानी बेकार होकर नष्ट हो जायगा। ऐसे ही मक्खीचूस का धन बिना किसी उपयोग के नष्ट हो जाता है।

'लेकिन महाराज, किसी गांव या कस्बे के पास ऐसी ही बावली हो, रमणीय घाटोंवाली, स्वच्छ एवं शीतल जलवाली। उसके जल का मनुष्य उपयोग करते हों– पीने हेतु, स्नान हेतु तथा अन्य कार्यों हेतु। पशु-पक्षी भी उसके जल का उपयोग करते हों। इस प्रकार उसके जल का उपयोग होते रहने से वह बेकार नहीं होगा, वह नष्ट नहीं होगा, वह सफल होगा। ऐसे ही भले मानुष की संपत्ति उसके स्वयं के, स्वजनों के,

परिजनों के, उसके सेवकों के, साधु-संतों के, श्रमण-ब्राह्मणों के तथा समाज के काम आती है। उसका संचित किया जाना फलदायक होता है।'

अपने कथन का निष्कर्ष निकालते हुये भगवान ने अंत में कहा–

'नीच व्यक्ति धन पाकर न तो स्वयं उसका भोग करता है, न दूसरों को करने देता है। पर विज्ञ जन धन का स्वयं भोग करते हुये, पिता-पुत्र, भाई-बंधु आदि का पोषण करते हैं। वे श्रमण-ब्राह्मण को दान-दक्षिणा देकर स्वर्ग-सुख को प्राप्त करते हैं।'

सेठ, पुण्य कमाओ

एक बार कोशलराज प्रसेनजित दोपहर में भगवान की सेवा में पहुंचे। उन्हें देखकर शास्ता ने पूछा– 'महाराज, भला इस समय आप कहां से आ रहे हैं?'

'भंते, नगर का एक सेठ मर गया। उसके पास अपार धन-दौलत और सोने की अशर्फियां थीं। निःसंतान था, उसका कोई वारिस नहीं। उसके धन को राजमहल भिजवाकर मैं आ रहा हूं।'

राजा ने उसके खान-पान व रहन-सहन के बारे में बताया– 'भंते, न तो वह कायदे से खाता-पीता था, न ही कायदे से रहता था। जब उसे सोने की थाली में स्वादिष्ट भोजन दिया जाता तब सेवकों को डंडे से मारकर उन्हें भोजन सहित वापस कर देता। 'क्या यह आदमी का भोजन है' कहते हुए वह टूटे चावलों की खिचड़ी सिरका के साथ खाता था। सुंदर एवं नये वस्त्रों का त्याग कर फटे-पुराने कपड़े पहनता था। कहीं आने-जाने के लिए टूटे-जर्जर रथ और मरियल घोड़ों का उपयोग करता था।'

प्रसेनजित द्वारा यह सब कहे जाने पर भगवान ने सेठ के पूर्वजन्मों के बारे में बताया– 'महाराज, अपने पूर्वजन्म में उस श्रेष्ठी ने एक दिन तग्गरसिखी नामक प्रत्येकबुद्ध को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। पर बिना किसी श्रद्धाभाव के उसने बुद्ध को भिक्षा दिलवायी। उसकी पत्नी बड़ी श्रद्धालु थी। उसने प्रत्येकबुद्ध तग्गरसिखी के भिक्षापात्र को श्रेष्ठ भोजन से भर दिया। यह जानकर सेठ को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा कि यदि यह भोजन मेरे सेवकों को मिला होता तो

अच्छा रहता। यह भिक्षु तो इसे खाकर दिन भर केवल सोयेगा। इस प्रकार मेरा भिक्षान्न बेकार गया। इतना ही नहीं महाराज, उस श्रेष्ठी ने संपत्ति के लोभ में अपने भाई के बेटे को मार डाला था। उसे अकेले जंगल में ले जाकर उसका गला दबा दिया था।'

आगे भगवान ने श्रेष्ठी की वर्तमान स्थिति के बारे में बताते हुये कहा–

'महाराज, तग्गरसिखी प्रत्येकबुद्ध को भिक्षा देने के कारण उसे सुगति मिली। सात बार वह स्वर्गलोक में जनमा। उसी पुण्य के फलस्वरूप वह सात बार श्रावस्ती में श्रेष्ठी के घर पैदा हुआ। पर पत्नी द्वारा बुद्ध को उत्तम भोजन दिये जाने पर श्रेष्ठी को जो पश्चात्ताप हुआ था, उस कर्म के विपाक से उसे श्रेष्ठ भोजन, श्रेष्ठ वस्त्र, श्रेष्ठ यान पसंद नहीं तथा कामभोगों के सेवन में उसकी रुचि नहीं होती। महाराज, उसने जो अपने छोटे से भतीजे की हत्या की उस कर्म के परिणामस्वरूप शत सहस्र वर्षों तक वह नरक में पकता रहा। उसी कर्मविपाक के अनुसार यह सातवीं बार उसकी लावारिस संपत्ति राजकोष में लायी गयी। महाराज, श्रेष्ठी का पुण्य एकदम समाप्त हो चुका है। उसने नया पुण्य अर्जित नहीं किया, आज वह महारौरव नरक में पक रहा है।'

शास्ता की व्याख्या सुनकर राजा ने कहा– 'ओह! भंते, ऐसी विशाल संपत्ति के होते हुए भी न तो स्वयं उसका भोग किया, न इतने निकट रहते हुये आप भगवान सम्यकसंबुद्ध को दान देकर पुण्य ही कमाया.....।'

कोशल प्रसेनजित के कथन का अनुमोदन भगवान ने इन शब्दों में किया।

'महाराज, संपत्ति बुद्धिहीन व्यक्ति का विनाश करती है, निर्वाण खोजनेवाले का नहीं। प्रज्ञाहीन व्यक्ति संपत्ति की तृष्णा से अपना, अपनों का और परायों का भी नाश ही करता है।'

संतों से छल नहीं

सम्यक संबोधि प्राप्त होने के बाद भगवान गौतम बुद्ध के लाभ, यश कीर्ति आदि में क्रमशः वृद्धि होने लगी। इसे देखकर तैर्थिकों के मन में यह बात आयी कि श्रमण गौतम को जो अग्रलाभ और यश प्राप्त हो रहा है, वह किसी विशेष शील समाधि के कारण नहीं, बल्कि महाराज ने जो

उनके लिए आराम बनवा दिया है उसके कारण। तैर्थिकों के मतानुसार भौतिक समृद्धि से श्रमण गौतम का महत्त्व बढ़ा है न कि आध्यात्मिक उपलब्धि से। इसलिए उन्होंने सोचा कि अगर वे भी जेतवन के पास एक आराम बना लेते हैं तो उन्हें भी वैसे ही लाभ और यश-कीर्ति प्राप्त होने लगेगी।

ऐसा विचार कर तैर्थिकों ने काफी धन एकत्र किया और वे प्रसेनजित कोशल के पास गये। वह धन राजा को भेंट करते हुये उन्होंने कहा– 'महाराज, हमलोग जेतवन के पास आराम बनवायेंगे, यदि श्रमण गौतम या उनके श्रावक रोकने आवें तो उन्हें ऐसा न करने दें।' रिश्वत के रूप में वह धन स्वीकार कर राजा सहमत हो गया।

श्रमणों के लिए बनाये गये राजकीय आराम के पास ही तैर्थिकों ने अपना आराम बनाने का कार्य प्रारंभ कर दिया। इससे वहां हल्ला-गुल्ला होने लगा जिसे सुनकर शास्ता ने आनंद से पूछा– 'मछलीबाजार जैसा शोर कैसे हो रहा है?'

'भंते, तैर्थिक लोग जेतवन के पास तैर्थिकाराम बना रहे हैं।'

'आनंद, राजा से बताकर इसे रुकवा दो। बाद में ये लोग भिक्षुसंघ को परेशान करेंगे।'

शास्ता के आदेशानुसार आनंद राजा के पास गये। राजसेवकों ने स्थविर के आगमन की सूचना राजा को दी। पर तैर्थिकों द्वारा घूस स्वीकार कर लेने के कारण राजा महल से निकले ही नहीं। आनंद लौट आये। दूसरी बार भगवान ने अपने अग्रश्रावक सारिपुत्त और मोग्गल्लान को भेजा। राजा ने उनसे भी भेंट नहीं की। उन्होंने आकर भगवान को बताया– 'भंते, राजा अंतःपुर से बाहर नहीं आये।'

तत्क्षण भगवान के मुंह से सहज भाव से ये शब्द निकल पड़े– 'अपने राज में रहकर उसे मरने का अवकाश नहीं मिलेगा।'

दूसरे दिन भिक्षुसंघ परिवार सहित भगवान राजद्वार पहुंचे। शास्ता के आने की सूचना पाकर राजा बाहर आये। आदर-सत्कार के साथ भगवान को बैठने के लिए उसने आसन दिया। भोजन की व्यवस्था हेतु अपने आदमियों को आदेश दे स्वयं आकर भगवान के पास बैठ गये। भगवान ने सीधे राजा से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। इसलिए पूर्वकाल की एक घटना का दृष्टांत देकर राजा के आचरण के बारे में

उन्हें सचेत किया।

'महाराज, संन्यासियों को आपस में लड़ाना उचित नहीं। पूर्वकाल में ऋषियों को आपस में लड़ाने के कारण राजा का राज्य समुद्र में डूब गया।'

भयमिश्रित उत्सुकता से राजा के पूछने पर भगवान ने पूरा आख्यान सुनाया। 'महाराज, पूर्वकाल में भरुराष्ट्र में भरु राजा का शासन था। प्रतिवर्ष पांच-पांच सौ ऋषियों के दो समूह भरु नगर में आते और कुछ समय निवास करके चले जाते। पहले वाले ऋषिगण एक पेड़ के नीचे और दूसरे वाले ऋषिगण दूसरे पेड़ के नीचे वास करते। वे जब भी आते तब अपने-अपने वृक्षों के नीचे ही वास करते। कुछ दिनों के बाद एक पेड़ सूख गया। अब जो ऋषि वापस पहले आये वे अपना पेड़ सूखा हुआ देखकर दूसरे पेड़ के नीचे चले गये। दूसरा ऋषिसमूह जो बाद में आया, उसने पहले वाले तापसों को अपने पेड़ के नीचे बैठा पाया। बाद में आनेवाले तापसों ने आपत्ति की। 'आप लोग यहां क्यों बैठे हो?'

'आचार्य, हमारा पेड़ सूख गया। यह पेड़ काफी बड़ा है, हम दोनों के लिए इसमें काफी स्थान है।' पर दूसरे समूह ने सहमति नहीं दी– 'आपलोग यहां से निकलें, तभी हमलोग इसमें प्रवेश करेंगे।' हां-ना होते-होते बात काफी बढ़ गयी, दोनों ऋषिसमूह आपस में झगड़ने लगे।

ऋषियों के एक समूह ने सोचा कि ऐसे झगड़ने से काम नहीं चलेगा। उन्होंने अपने ऋद्धिबल से सोने-चांदी के सिक्कों का निर्माण किया जिसे लेकर वे भरु राजा के पास गये। राजा ने ऋषियों की भेंट स्वीकार कर ली। ऋषियों ने राजा से पूरी बात बतायी और दूसरे समूह के तापसों को वृक्षमूल से राजपुरुषों द्वारा हटवाने का निवेदन किया। राजा भरु ने ऋषियों की बात मान ली। जब बाहर निकालने गये समूह के ऋषियों को वास्तविकता का पता चला तब वे भी ऋद्धिबल से गढ़े सिक्के लेकर राजा को भेंट देने पहुंचे। राजा को पूरी बात बता कर उन्होंने काबिज ऋषिसमूह को बाहर हटवाने का निवेदन किया। राजपुरुषों को भेजकर राजा ने दूसरे समूह के तापसों को भी बाहर करवा दिया।

अपने व्यवहार और अपने प्रति राजा के व्यवहार से दोनों समूह के ऋषियों को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसी क्षण उन्होंने पर्वत प्रदेश को लौट

जाना ही उचित समझा। पर राजा का यह आचरण देवताओं को अच्छा नहीं लगा। 'ऋषियों से घूस लेकर राजा ने उन्हें आपस में लड़ाया' इस बात से क्रुद्ध होकर देवताओं ने समुद्र को प्रेरित कर राजा भरु का समूचा राज्य समुद्र में डुबा दिया। इस प्रकार अपने पूरे राज्य सहित राजा विनाश को प्राप्त हुआ।

कोशलनरेश ने भगवान के व्याख्यान को बड़े ध्यान से सुना। 'बुद्धों का कथन विश्वसनीय होता है' ऐसा सोचकर प्रसेनजित ने अपने कार्य पर विचार किया– 'मैंने अनुचित किया है। पूज्यों के साथ छल नहीं करना चाहिये।' ऐसा सोचकर राजपुरुषों द्वारा तैर्थिकों से उनका निर्माणकार्य रुकवा दिया। उनसे प्राप्त द्रव्य-सामग्री आदि उन्हें वापस न देकर उसी से उनके लिए विहार बनवाने का निश्चय किया।

राजा ने इस घटना को मल्लिका को बताया। रानी ने साधुवाद दिया– 'महाराज, आप गिरते-गिरते संभल गये। उन भगवान सम्यकसंबुद्ध ने आपको बचा लिया।'

घड़े को फूटना ही है

दोपहर में असमय ही प्रसेनजित कोशल भगवान के यहां पहुंचे। भगवान ने पूछा– 'महाराज, आप इतने उदास क्यों हैं?'

'भंते, मेरी दादी मर गयी। वह एक सौ बीस वर्ष की हो गयी थी। वह मुझे बड़ी ही प्यारी थी। भगवन, यदि मेरी दादी न मरे तो मैं हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न को भी लेना स्वीकार न करूं। बल्कि, मैं हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न, अच्छे-अच्छे गांव, जनपद दे डालूं, यदि मेरी दादी न मरे तो।'

भगवान ने समझाया– 'महाराज, सभी जीवधारी मरणशील हैं। एक-न-एक समय उनका मरना निश्चित है। मृत्यु से वे किसी भी तरह बच नहीं सकते।'

'भंते, आश्चर्य है। भगवान ने बड़ा ठीक कहा सभी जीवधारी मरणशील हैं।'

'हां महाराज, यही वास्तविकता है। जो जन्म लेता है उसे मरना है। मृत्यु से कोई नहीं बच सकता। कुम्हार के जितने घड़े हैं– कच्चे या पक्के, छोटे या बड़े सभी को एक-न-एक दिन फूटना है। वे फूटने से

किसी भी तरह बच नहीं सकते। ठीक वैसे ही सभी जीवधारी मृत्यु से बच नहीं सकते।

'महाराज, सभी जीवधारी मरेंगे। मृत्यु में ही जीवन का अंत है। पर उनकी गति उनके कर्मानुसार होगी। पुण्य करने से सुगति और पाप करने से दुर्गति को प्राप्त होंगे। मनुष्य के कर्म ही उनके साथ जाते हैं।'

मृत्यु बनाम धर्माचरण

एक ओर बैठे भगवान ने कोशलराज से पूछा– 'महाराज, कहां से आ रहे हैं?'

'भंते, घर से ही, राजकाज में बुरी तरह फंसा था। राजा के लिए अनेक कार्य होते हैं। राज्याभिषेक के बाद पूरे राज्य की व्यवस्था, धन-संपत्ति-ऐश्वर्य आदि की रक्षा, सांसारिक लोभ, राज्य की जिम्मेदारियां, सीमा की सुरक्षा, पूरे राज्य को नियंत्रण में रखना आदि, आदि। भगवन, राजा को जल्दी फुर्सत कहां मिलती है?'

महाराज के ऐसे उत्तर पर भगवान ने उन्हें बड़ी युक्ति से समझाया- 'हां महाराज, सो तो है। पर, मान लीजिये पूरब से आपका कोई विश्वस्त अनुचर आवे और कहे कि महाराज, मैंने देखा है पूरब की ओर से एक मेघाकार महान विशाल पर्वत सभी जीवों को पीसते हुये चला आ रहा है। देव, अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।'

'तो महाराज! मनुष्यों के लिए ऐसा दारुण संकट आ जाने पर क्या करना होगा?'

'भंते, इस प्रकार के भय के आने पर धर्माचरण, संयम, पुण्य कार्य के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है?'

'तो महाराज, आपसे कहता हूं आप सचेत हो जायं। उस पर्वत के समान ही चारों ओर से जरा और मृत्यु आप पर चढ़ती आ रही हैं। जरा और मृत्यु के इस आक्रमण से बचने के लिए क्या करना होगा?'

भगवान के प्रश्न पर राजा ने अपना अनुभव बताया– 'भंते, क्षत्रिय राजा को बड़ी-बड़ी चतुरंगिणी सेना का सामना करना पड़ता है। पर वह सेना भी जरा और मृत्यु के सामने क्या चीज है? वैसे ही भगवन, हमारे गुणी मंत्री जो मंत्रबल से शत्रुओं को भगा सकते हैं, हमारा राजकोष

जिसके धन से हम शत्रुओं में फूट डाल सकते हैं, ये सभी बढ़ते हुये जरा-मृत्यु के सामने बेकार हैं। कुछ नहीं कर सकते। बस भंते, जो कुछ भी है, वह है धर्माचरण, पुण्यकर्म और संयम का अभ्यास। इनके सिवाय और क्या किया जा सकता है?'

कोशल प्रसेनजित के कथन का अनुमोदन करते हुये भगवान ने कहा– 'महाराज, ठीक ऐसी ही बात है। गगनचुंबी पर्वत की तरह जरा और मृत्यु चारों दिशाओं से प्राणियों को पीसती हुयी चली आ रही हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र सभी समान रूप से पीसे जा रहे हैं। चतुरंगिणी सेना, मंत्र, राजकोष, धन किसी से भी इन दोनों को रोका नहीं जा सकता। बस मन, वचन और काया का धर्माचरण करनेवाले की संसार में प्रशंसा होती है और वह मर कर स्वर्ग में सुख से रहता है।'

अध्याय-५

धर्म की सुधर्मता

प्रस्तुत अध्याय भगवान बुद्ध और उनके धर्म के प्रभाव को दर्शाता है। पू० गुरुजी (गोयन्का जी) अपने प्रवचनों में साधकों को प्रेरित करते हुये उनसे कहते रहते हैं, 'प्रमाद-रहित होकर अपने काम में लगे रहें, बाकी सब धर्म पर छोड़ दें। वह अपना काम करेगा ही। 'भिक्षुणी का पुत्र' प्रसंग इसका उदाहरण है। अति विकट परिस्थिति में धर्म उसकी रक्षा करता है। उसके धार्मिक आचरणों के कारण देवी मल्लिका की उपमा भगवान ने गंधयुक्त पुष्प से दी। पर 'धर्म की सुधर्मता' तो कोशल-नरेश को तब दिखायी पड़ी जब उन्होंने दुर्दांत हत्यारे अंगुलिमाल को शीलवान, धर्मात्मा और ब्रह्मचारी बना हुआ पाया, बिना दंड और शस्त्र का प्रयोग किये। आगे के प्रसंगों में विस्तार से देखें।

बंधन को जानो

एक दिन कुछ भिक्षुओं ने श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि राजपुरुष बहुत से लोगों को रस्सी और सीकड़ से बांधकर खींचे लिए जा रहे हैं। भिक्षा से लौटने पर भिक्षुओं ने भोजन किया और अभिवादन करके भगवान के पास बैठ गये।

भिक्षुओं ने रास्ते में जो कुछ देखा था उसे भगवान से कह सुनाया– 'भंते, आज राजा के आदमी बहुत से लोगों को खींचते-घसीटते लिए जा रहे थे। सेवकों ने उन लोगों को कस कर बांध रखा था– कितनों को रस्सी से और कितनों को सीकड़ से।'

यह सुनकर भगवान के मुंह से निकला– 'भिक्षुओ, जो तुमने देखा वह कोई बंधन नहीं है। असली बंधन को जानो-पहचानो–

'पंडित लोग उसे असली बंधन नहीं कहते जो रस्सी, लोहे-लक्कड़ के बने होते हैं। धन-दौलत, पुत्र-कलत्र से जो अपेक्षायें होती हैं, पंडित लोग उन्हें ही असली बंधन कहते हैं। ये बंधन सूक्ष्म होते हैं और खोलने में कठिन भी। पर इन्हें भी काटकर लोग कामसुख से अपेक्षारहित हो

जाते हैं।'

सबके प्रति निर्वेद

एक बार भिक्षुओं में इस बात की चर्चा चली कि कोशल-काशी के अंतर्गत जितने भी प्रदेश हैं, उनके निवासियों में कोशलराज प्रसेनजित ही अग्र हैं, श्रेष्ठ हैं। भगवान को जब भिक्षुओं के इस वार्तालाप का पता चला, तब वे समझ गये कि भिक्षुओं के मन में राजा के प्रति राग पैदा हो रहा है। इसलिए भगवान ने उन्हें संबोधित करते हुये कहा– 'भिक्षुओ, लोक में श्रेष्ठ या हीन जो कुछ भी है, सब परिवर्तनशील है। कोशल-काशी का एक सामान्य नागरिक और महाराज प्रसेनजित इस बात में दोनों समान हैं। दोनों में ही परिवर्तन अनिवार्य रूप से हो रहा है। इसलिए ज्ञानी श्रावक इस परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखकर सबके प्रति वैराग्य-भाव रखता है।

'भिक्षुओ, काशी-कोशल की तो बात ही क्या, जितने क्षेत्र में चंद्रमा और सूर्य विचरते हैं, वे सभी परिवर्तनशील हैं। इतने की तो बात ही क्या, इनका हजार-लाख गुना बड़ा यह लोक भी परिवर्तनधर्मा है। इसलिए इसके प्रति भी ज्ञानी हमेशा निर्वेद प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं ये जितने मानवलोक, देवलोक हैं, ये सभी परिवर्तित होते रहते हैं। यहां तक कि ब्रह्मलोक का अग्रप्राणी महाब्रह्मा भी परिवर्तित होता है। इस बात को देखता हुआ ज्ञानी श्रावक महाब्रह्मा के प्रति भी निर्वेद प्राप्त करते हैं।

'भिक्षुओ! एक समय ऐसा होता है जब लोक का विकास होता है। उस समय प्राणी मनोमय, प्रीतिभोजी और स्वयंप्रभ होते हैं। अंतरिक्ष में विचरण करते हैं, दीर्घकाल तक रहते हैं। भिक्षुओ, इस समय विकसित होनेवाले लोक में आभास्वर देवता अग्र कहलाते हैं। ये आभास्वर देवता भी परिवर्तनशील हैं, परिणाम प्राप्त करते हैं। इस बात को देखता हुआ ज्ञानी श्रावक उसके प्रति भी निर्वेद प्राप्त करता है। जब अग्र और श्रेष्ठ के प्रति ज्ञानी निर्वेद प्राप्त करता है तब हीन की बात ही क्या? परिवर्तन के लिए श्रेष्ठ और हीन, अग्र और गौण में कोई अंतर नहीं। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इस सत्य को देखते हुये ज्ञानी सबके लिए निर्वेद भाव रखता है।'

पांच बातें अप्राप्य

'महाराज, ये पांच बातें ऐसी हैं जो किसी को प्राप्य नहीं। न किसी श्रमण को, न किसी ब्राह्मण को, न किसी देवता को, न किसी मार को, न किसी ब्रह्मा को और न ही इस लोक में किसी अन्य को प्राप्य हैं।

'कौन-सी पांच बातें? कि जराधर्मी जरा को प्राप्त न हो, मरणधर्मी मृत्यु को प्राप्त न हो, क्षयधर्मी क्षय को प्राप्त न हो, नाशधर्मी नाश को प्राप्त न हो और रोगधर्मी रोग को प्राप्त न हो।'

भगवान ने यह बात प्रसेनजित से उस समय कही जब वे शास्ता की सेवा में बैठे थे। एक राजपुरुष आया और उसने राजा के कान में देवी मल्लिका के शरीरांत का समाचार बताया। इसे सुनते ही राजा दुःखी और उदास हो गये। उनका शरीर ढीला पड़ गया और चेहरा निस्तेज। राजा को सोच में पड़ा देखकर शास्ता ने सांत्वना देते हुये उक्त पांच बातें कहीं। पर, यह केवल मौखिक सांत्वना नहीं थी। यह भगवान का अपना अनुभव था। ऐसे अवसरों पर प्रायः लोग लोकाचारवश ऐसा कहा करते हैं। पर, भगवान ने तो अपना अनुभूत सत्य कहा। तत्क्षण भगवान ने यह अनुभव किया कि दुःखी राजा इस समय उनकी देशना ग्रहण करने में समर्थ नहीं हैं, इसलिए उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करना उचित समझा।

'भिक्षुओ, अज्ञानी व्यक्ति जरा को प्राप्त होने पर यह नहीं सोचता कि यह बुढ़ापा केवल मुझे ही प्राप्त हुआ है, बल्कि सभी जन्म लेनेवालों को प्राप्त होता है। सभी पैदा होनेवाले जराधर्मी हैं। यदि बूढ़ा होने पर मैं सोच करूं, दुःखी होऊं, छाती पीटूं तो भोजन भी अच्छा नहीं लगेगा, शरीर दुर्वर्ण हो जायगा और काम-काज भी नहीं हो सकेगा। ऐसे में शत्रु प्रसन्न होंगे और मित्र चिंतित। भिक्षुओ, इसे ही कहते हैं कि अज्ञानी विषाक्त बाण से आहत है, वह अपने को ही तपाता है।

'भिक्षुओ, इसी प्रकार हर एक जन्म लेनेवाला क्षय को, नाश को, रोग को और मृत्यु को प्राप्त होगा ही। वह यह न सोचे कि केवल मैं क्षयधर्मी, नाशधर्मी, रोगधर्मी और मरणधर्मी हूं। यदि क्षय, नाश और रोग को प्राप्त होकर और मृत्यु के बारे में सोचकर मैं दुःखी होऊं, रोऊं-पीटूं, तो भोजन भी अच्छा नहीं लगेगा, शरीर दुर्वर्ण हो जायगा और काम-काज भी नहीं हो सकेगा। ऐसे में शत्रु प्रसन्न होंगे और मित्र चिंतित। भिक्षुओ,

इसे ही कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति तीर से घायल है, वह अपने से अपने को तपा रहा है।'

'पर भिक्षुओ, जो ज्ञानी है वह जरा को प्राप्त होने पर यह विचार करता है कि यह बुढ़ापा केवल मुझे ही प्राप्त नहीं हुआ है। सभी जन्म लेनेवाले प्राणी जराधर्मी हैं, क्षयधर्मी हैं, नाशधर्मी हैं, रोगधर्मी हैं और मरणधर्मी हैं। यदि मैं जरा को, क्षय को, नाश को, रोग को प्राप्त होने पर और मृत्यु की बात सोच-सोचकर दुःखी होऊं, छाती पीटूं, तो भोजन भी अच्छा नहीं लगेगा, शरीर पीला पड़ जायगा, काम-काज में मन नहीं लगेगा। ऐसे में शत्रुओं की प्रसन्नता और मित्रों की चिंता का कारण बनूंगा। इसलिए वह बुढ़ापा, क्षय, नाश, रोग को प्राप्त होकर और मृत्यु के बारे में सोचकर दुःखी नहीं होता है, न रोता है, न ही छाती पीटता है। भिक्षुओ, इसे कहते हैं कि ज्ञानी आर्यश्रावक ने अपने शरीर में लगे विषाक्त तीर को निकाल बाहर कर लिया है। वह आर्यश्रावक शोकरहित हो गया है। वह अपने से अपने आपको तपाता नहीं है।'

'भिक्षुओ, ये पांच बातें ऐसी हैं जो किसी को प्राप्य नहीं। न किसी श्रमण को, न किसी ब्राह्मण को, न किसी देवता को, न किसी मार को, न किसी ब्रह्मा को, न ही इस लोक में किसी अन्य को प्राप्य हैं।'

भिक्षुओं के माध्यम से दुःखी प्रसेनजित को सांत्वना देते हुये शास्ता ने ये गाथाएं कहीं जिनका अर्थ निम्नलिखित हैः

'चिंता करने से, रोने-पीटने से अर्थ की सिद्धि नहीं होती। शत्रुओं को जब पता चलता है कि अमुक व्यक्ति दुःखी है तो वे प्रसन्न होते हैं। इसलिए अर्थ-अनर्थ को जानकर ज्ञानी विपत्ति पड़ने पर कांपता नहीं, तो उसकी अविकृत मुखाकृति देखकर शत्रु दुःखी होते हैं। जप करने से, मंत्र बल से, सुभाषित का उपयोग करने से, कुछ लेने-देने से, वंश परंपरा की बात करने से, जैसे भी अर्थ की सिद्धि होती हो, वैसे अर्थ की सिद्धि का प्रयास करे.....चिंतामुक्त होकर उसे सहन करे।'

कुटिल वचन साधू सहे

एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उन दिनों, दिन-प्रति-दिन भगवान का आदर-सत्कार बढ़ता ही जा रहा था। पूजा और प्रतिष्ठा के साथ भोजन-दान प्राप्त होते

थे। लोग भिक्षुसंघ का बड़ा सम्मान-सत्कार करते थे। किंतु अन्य मतावलंबी साधुओं को न तो उचित सम्मान-सत्कार प्राप्त था, न ही भोजन-चीवर आदि।

वे साधु भगवान और भिक्षुसंघ के बढ़ते हुये सम्मान-सत्कार को सह नहीं सके। शास्ता को नीचा दिखाने के लिए और उन्हें बदनाम करने के लिए तथा उनके विरुद्ध लोगों के मन में आक्रोश पैदा करने के लिए, उन साधुओं ने एक उपाय रचा। वे सुंदरी नामक एक परिव्राजिका के पास गये और बोले– 'बहन, क्या तुम हमलोगों की कुछ भलाई कर सकती हो?'

'भाई, जरूर। आप बतावें मैं आपके लिए क्या कर सकती हूं? बंधुओं के भले के लिए मैं प्राण भी देने को तैयार हूं।'

इस प्रकार प्रेरित कर वे साधु परिव्राजिका को अपने साथ लेकर जेतवन की ओर चले। बीच में ही एक निर्जन स्थान में उसे जान से मारकर जेतवन के पास एक गड्ढे में उसके शव को छिपा दिया। बाद में वे कोशलराज प्रसेनजित के पास गये और कहा– 'महाराज, सुंदरी परिव्राजिका दिखायी नहीं दे रही है। उसका कुछ अता-पता नहीं मिल रहा है।'

राजा ने पूछा–'आप लोगों का संदेह कहां जा रहा है?'

'महाराज, जेतवन में।'

'तो जाकर जेतवन की तलाशी लें।'

जेतवन की तलाशी का नाटक करते हुये उन साधुओं ने गड्ढे से सुंदरी के शव को निकाल लिया। उसे लेकर श्रावस्ती के चौराहों और गलियों में घूमने लगे। शव को दिखाकर लोगों को भड़काना शुरू किया– 'भाइयो, शाक्यपुत्रों की करतूत देखो। ये भिक्षु कितने झूठे, निर्लज्ज और पापी हैं। धर्म, संयम, शील और ब्रह्मचर्य के नाम पर ये भिक्षु पाप अर्जित कर रहे हैं। इनमें तनिक भी श्रामण्य और ब्राह्मण्य नहीं रह गया। इनके श्रमणभाव और निष्पापता दोनों ही नष्ट हो चुके हैं.....। भला देखिये, व्यभिचार करने के बाद स्त्री को जान से मार डालना क्या उचित है? क्या उन्हें यह शोभा देता है?'

भगवान ने भिक्षुओं को आश्वस्त किया– 'यह बात बहुत दिन नहीं

रहेगी। केवल सप्ताह भर या दस दिन। उसके बाद धीरे-धीरे अपने आप बंद हो जायगी। भिक्षुओ, जो तुम्हें देखकर गाली दे उन्हें तुम यह उत्तर दो :

झूठे की, दुष्कर्मी की गति, होती एक समान।
दोनों पड़ते नरक में, सत्य कहें भगवान।।

लोगों से गालियां और अपशब्द सुनने पर भिक्षु भगवान के निर्देशानुसार उत्तर देते। भिक्षुओं के उत्तर से लोगों का मन बदलने लगा। उन्होंने विचार किया कि शाक्यपुत्र ऐसा नहीं कर सकते, वे बराबर सौगंध खाते हैं।

सचमुच सप्ताह भर के अंदर सुंदरी-चर्चा समाप्त हो गयी। भिक्षुओं का आदर-सत्कार पहले जैसे होने लगा। बड़े ही आश्चर्य के साथ भिक्षुओं ने यह बात भगवान से बतायी। उसे सुनकर भगवान के मुंह से उदान के जो शब्द निकले उनके अर्थ हिंदी में निम्नलिखित हैं :

दुर्विनीत भड़के जैसे, रण में घायल नाग।
सहते भिक्षु कटु वचन, बिना जगाये आग।।

भिक्षु द्वारा स्थान परिवर्तन

एक बार भिक्षु उपनन्द ने राजा प्रसेनजित को वर्षावास का वचन दिया। उस भिक्षु उपनन्द ने आश्रम जाते समय रास्ते में एक बहुत चीवरों वाला आवास देखा। तब उनके मन में आया, 'क्यों न मैं इस दूसरे आवास में वर्षावास करूं।' ऐसा सोचकर वे दूसरे आवास पर ही रुक गये। उधर कोशलनरेश उपनन्द की प्रतीक्षा करते रहे। पर भिक्षु उस निर्धारित आवास पर नहीं आये। राजा परेशान और हैरान थे- 'भिक्षु लोग झूठ नहीं बोलते हैं। भगवान झूठ न बोलने की प्रशंसा करते हैं।' जब इस बात का पता संतोषी और अल्पेच्छ भिक्षुओं को चला तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। – 'कैसे आयुष्मान उपनन्द राजा को वचन देकर मुकर गये?' उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान से कही।

इस संबंध में भिक्षु भगवान के पास एकत्र हुये।

भगवान ने पूछा– 'उपनन्द, क्या यह सच है कि तू कोशलनरेश को वर्षावास का वचन देकर वहां नहीं गया?'

'हां भंते, सच है।'

भगवान ने उसे फटकार लगायी– 'तू निकम्मा है। राजा को वचन देकर तू नहीं गया! तू जानता है कि अनेक प्रकार से मैंने झूठ बोलने की निंदा की है। यह तूने लोभवश किया, भिक्षु के लिए यह उचित नहीं।' इसके बाद भिक्षुओं को उपदेश करते हुये भगवान ने कहा– 'भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु, किसी को वर्षावास का वचन देकर वहां न पहुंचे और किसी अन्य स्थान पर वर्षावास करे तो उसे दुक्कट (दुष्कृत) का दोष लगेगा।'

नियम संशोधन

एक बार कोशलनरेश प्रसेनजित का शत्रु के साथ युद्ध प्रारंभ हो गया। सैनिकों के साथ राजा भी युद्धभूमि में थे। युद्ध के लिए उद्यत सैनिकों को देखने के लिए षट्वर्गीय भिक्षु वहां पहुंचे। राजा ने दूर से ही उनको आते हुये देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ– 'भिक्षु लोग यहां! 'बुलाकर पूछा– 'भंते, आपलोग किस कारण से यहां आये हैं?'

"हम महाराज को देखने के लिए यहां आये हैं।"

'भंते, हम सैनिक हैं। राष्ट्र-राज्य की सुरक्षा हमारी जिम्मेदारी है। हम अपने कर्तव्य-पालन के लिए यहां आये हैं। मुझे देखने में क्या रखा है? भंते लोग भगवान को देखें, आप लोगों के लिए यही उचित है।'

भिक्षुओं के इस आचरण का पता जब सैनिकों को चला तो वे खिन्न हो गये और उनमें असंतोष फैलने लगा। 'शाक्यपुत्र श्रमण युद्धरत सैनिकों को देखने के लिए क्यों आते हैं? हम तो अपने राष्ट्र-राज्य की रक्षा के लिए, जीविका के लिए, बीवी-बच्चों के पालन-पोषण के लिए सेना में भर्ती होते हैं। हमें यहां कितना कष्ट होता है? पर भिक्षुलोग यहां क्या देखने आते हैं? उनके देखने का उद्देश्य क्या है?'

सैनिकों की इस खिन्नता और असंतोष की जानकारी संतुष्ट और नियमपालक भिक्षुओं को हुयी, तब उन्हें कष्ट हुआ। यह बात उन्होंने भगवान से कही।

भगवान के पूछने पर षट्वर्गीय भिक्षुओं ने स्वीकार किया कि वे युद्धभूमि में सैनिकों को देखने गये थे। इस आचरण के लिए भगवान ने उन्हें कड़े शब्दों में फटकारा और उन्हें ऐसे आचरण के दोष बताये। फिर

भिक्षुओं को संबोधित करते हुये नियम बनाया, 'जो भिक्षु युद्धभूमि में सैनिकों को देखने जाता है, उसे पाचित्तिय आपत्ति (विनय उल्लंघन दोष) होगी।'

कुछ दिन बाद एक भिक्षु का मामा रणभूमि में बीमार पड़ गया। उसने अपने भिक्षु भांजे से आकर मिलने का संदेश भेजा। भांजे भिक्षु ने भगवान से पूरी बात बतायी। नियम में संशोधन करते हुये भगवान ने उसे मिलने की अनुमति दी। आवश्यक कारण के बिना जो भिक्षु रणभूमि में उद्यत सैनिकों को देखने जायगा उसे पाचित्तिय आपत्ति (विनय उल्लंघन दोष) होगी।

स्थविर से भूल

देवी मल्लिका के निवेदन पर प्रसेनजित भगवान के पास गये और उनका अभिवादन करके बोले– 'भंते, रानी मल्लिका और वासभखत्तिया धर्म सीखना चाहती हैं। हमारे अंतःपुर में धर्मकथन के लिए भगवान एक भिक्षु को आज्ञा दें।'

राजा के निवेदन पर भगवान ने यह जिम्मेदारी आनंद को सौंप दी। स्थविर आनंद नियमित रूप से राजा के अंतःपुर में धर्मोपदेश के लिए जाने लगे। एक दिन कोशलनरेश और मल्लिका सोये हुये आराम कर रहे थे। आयुष्मान आनंद को आते हुये मल्लिका ने कुछ दूरी पर देख लिया। मल्लिका उठ गयी। वहां मल्लिका को देखकर स्थविर आनंद अपने आराम लौट आये। इस घटना की चर्चा उन्होंने भिक्षुओं से की। इसे जानकर भिक्षु असंतोष व्यक्त करने लगे। उन्होंने टीका-टिप्पणी शुरू कर दी– 'बिना पूर्व सूचना के कैसे आयुष्मान आनंद ने राजा के अंतःपुर में प्रवेश किया?' भिक्षुओं ने इसे भगवान से बताया।

भगवान ने आनंद से पूछा– 'आनंद क्या यह सच है कि तुमने पहले बिना बताये अंतःपुर में प्रवेश किया था?'

'हां भंते, सच है।'

तत्क्षण भगवान ने आनंद के इस आचरण की भर्त्सना की। बिना पूर्व सूचना के अंतःपुर में प्रवेश करने के कई दुष्परिणाम बताये। – 'भिक्षुओ, ऐसे में भिक्षु पर राजा तथा दूसरे लोग भी संदेह करने लगते हैं, जैसे स्त्रियों से संबंध में, बहुमूल्य वस्तु के खो जाने के बारे में, अंतःपुर का

भेद खुल जाने के विषय में, आदि आदि। इसके अलावा अंतःपुर का वातावरण भिक्षु के लिए अनुकूल नहीं होता।'

इस विषय में भगवान ने नियम बनाया– 'जो भिक्षु राजा के अंतःपुर में पूर्व सूचना दिये बिना प्रवेश करता है उसे पाचित्तिय (विनय उल्लंघन) दोष होगा।'

भिक्षुणी को गर्भ!

राजगृह के एक श्रेष्ठी की बेटी कुमारी अवस्था में ही प्रव्रजित होना चाहती थी। पर इस विषय में जब उसने मां-बाप से प्रार्थना की तब उन्होंने अनुमति नहीं दी। विवाहोपरांत वह पतिगृह गयी। वहां वह गर्भवती हो गयी। इस बीच अपने गर्भभाव से अनजान पति को राजी करके उसने अनुमति ले ली और देवदत्त-पक्षीय भिक्षुणियों में प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कुछ दिनों के बाद उसके गर्भिणीभाव को देखकर भिक्षुणियों ने देवदत्त से कहा। देवदत्त ने बिना किसी प्रकार का विचार किये उसकी प्रव्रज्या निरस्त करके उसे 'अश्रमणी' घोषित कर दिया। पर उस भिक्षुणी ने देवदत्त के निर्णय को स्वीकार नहीं किया। उसने प्रतिवाद किया और कहा– 'न तो स्थविर देवदत्त 'बुद्ध' है न ही मैं उनकी अनुयायी हो प्रव्रजित हुयी हूं। जो लोक में अग्र हैं, सम्यकसंबुद्ध हैं, मैं उन भगवान की अनुयायी हो प्रव्रजित हुयी हूं। यह प्रव्रज्या मुझे बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुयी है। इसका लोप न करें। मुझे जेतवन में शास्ता के पास ले चलें। अब मैं धर्मपथ नहीं छोड़ सकती।'

राजगृह से पैंतालीस योजन चलकर भिक्षुणियां श्रावस्ती के जेतवन पहुंची। शास्ता का अभिवादन कर उन्होंने सारी बात उनसे कही। भगवान तो सब कुछ समझ गये– 'यद्यपि इसे गृहस्थ जीवन में गर्भ रहा है, फिर भी तैर्थिकों को यह कहने के लिए रह जायगा कि श्रमण देवदत्त द्वारा त्यक्ता भिक्षुणी को साथ लिए फिरता है। इसलिए इस प्रसंग को शांत करने के लिए राजा सहित परिषद के बीच इसका निर्णय होना चाहिये।' फिर एक दिन कोशलनरेश प्रसेनजित, अनाथपिण्डिक, छोटे अनाथपिण्डिक, महाउपासिका विशाखा तथा अन्य प्रसिद्ध महाकुलों को बुलवाया गया। इन चारों को परिषद के उपस्थित होने पर भगवान ने स्थविर उपालि को तरुणी भिक्षुणी के गर्भ-परीक्षण की जिम्मेदारी सौंपी।

शास्ता के निर्देशानुसार स्थविर उपालि ने परिषद के बीच अपना

आसन ग्रहण किया। महाराज के सम्मुख उपासिका विशाखा को बुलाकर उपालि ने कहा– 'विशाखे, इस तरुणी ने अमुक माह के अमुक दिन प्रव्रज्या ली है। यह गर्भवती है। आप इस बात की यथार्थ जानकारी प्राप्त करें कि इसका गर्भ प्रव्रज्या के पूर्व का है या पश्चात का।'

उपासिका ने 'अच्छा भंते', कहकर विधिवत जांच करना प्रारंभ कर दिया। भिक्षुणी को आड़ में ले जाकर उसके हाथ, पांव, उदर तथा नाभि तक अच्छी तरह से देखा। फिर महीना और दिन का विचार करते हुये वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि गर्भ इसके प्रव्रज्या ग्रहण के पूर्व गृहस्थ काल का है। अपना निष्कर्ष उपासिका ने स्थविर से विधिवत निवेदन किया। तब जाकर स्थविर उपालि ने उपासिका के निष्कर्ष के आधार पर अपना निर्णय परिषद के बीच सुनाते हुये उस भिक्षुणी को दोषमुक्त किया। बरी हो जाने पर भिक्षुणी भगवान सहित भिक्षुसंघ को प्रणाम कर भिक्षुणियों के साथ विहार चली गयी। समय आने पर उसने महाप्रतापी पुत्र को जन्म दिया जो आगे चलकर कुमार कस्सप के नाम से विख्यात हुआ।

साधु साधु....की गंध

व्यक्ति की वाणी और उच्चारण का उसके भावी जीवन पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत प्रसंग इस बात की पुष्टि करता है। श्रावस्ती के एक कुटुंबिक पुत्री के पति ने शास्ता से धर्मदेशना सुनकर सोचा कि गृहस्थ जीवन में धर्म का संपूर्ण आचरण संभव नहीं है, इसलिए घर-बार छोड़कर स्थविर के पास जाकर वह प्रव्रजित हो गया। इस प्रकार कुटुंबिक-पुत्री अकेली हो गयी। राजा प्रसेनजित ने उसे पतिहीन जानकर अपने अंतःपुर में शरण दी। एक दिन नील कमल का गुच्छा ले राजा ने अंतःपुर में प्रवेश किया और सभी स्त्रियों को एक-एक गुच्छा दिया। गुच्छों को बांटते समय पतिहीना स्त्री के दोनों हाथों में फूल के गुच्छे आ गये। उन फूलों को पाकर पहले तो उसने हंसने की मुद्रा बनायी पर बाद में फूलों को सूंघ कर वह रोने लगी। इन फूलों और उनकी गंध से उसे अपने पति के गंध की याद आ गयी जो भिक्षु बन गया था। स्त्री के दो विरोधी आचरण एक ही साथ देखकर राजा ने उसे बुलवाया और उससे पहले उसके हंसने और बाद में रोने का कारण पूछा। स्त्री ने अपने दोनों परस्पर विरोधी आचरणों का कारण बताया पर कोशलनरेश

को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। सोचा– 'यह कैसे होगा कि आदमी के शरीर और मुंह से सुगंध निकले? मनुष्यों के शरीर से तो दुर्गंध ही निकलती है। अवश्य यह स्त्री झूठ बोल रही है। यद्यपि उसने तीन बार अपने कथन को दोहराया, फिर भी राजा को विश्वास नहीं हुआ।

उसके कथन की सचाई परखने के लिए महाराज ने दूसरे दिन पूरा राजनिवास सभी प्रकार की सुगंधित वस्तुओं से खाली करा दिया। भगवान बुद्ध सहित भिक्षुसंघ को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया। भोजन के अंत में राजा ने उस स्त्री से पूछा– 'वह स्थविर कौन है?' 'यह है' कहते हुये स्त्री ने उसे संकेत से दिखाया। राजा ने शास्ता का अभिवादन कर कहा– 'भंते, भगवान भिक्षुसंघ के साथ आराम करने जायं, हमारा अनुमोदन अमुक स्थविर करेंगे।' राजा के ऐसा निवेदन करने पर भगवान उस भिक्षु को वहीं छोड़कर स्वयं भिक्षुसंघ के साथ विहार चले गये। जब स्थविर ने अनुमोदन करना प्रारंभ किया, उसके मुंह खोलते ही सारा राजपरिवेश सुगंध से भर गया। स्त्री के कथन की सचाई जानकर राजा बड़े प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन शास्ता से कोशलनरेश ने इसका कारण पूछा। भगवान ने बताया, 'महाराज, पूर्वजन्मों में धर्मकथन सुनते समय वह 'साधु-साधु' कहते हुये खूब मन लगाकर सुनता था। इस कारण से उसे यह शुभ परिणाम प्राप्त हुआ है।' आगे भगवान ने कहा– 'धर्मकथन के समय 'साधु साधु.... 'कहनेवाले के मुंह से कमल की सुगंध निकलती है।'

कोई दूसरा प्रिय नहीं

कोशलराज प्रसेनजित रानी मल्लिका के साथ राजमहल की ऊपरी मंजिल पर बातें कर रहे थे। राजा ने पूछा, 'मल्लिके, क्या तुम्हें अपने से बढ़कर कोई दूसरा प्रिय है?'

'नहीं महाराज, मुझे अपने से बढ़कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है। अच्छा महाराज, क्या आपको अपने से बढ़कर कोई दूसरा प्रिय है?'

राजा ने भी वही उत्तर दिया– 'नहीं देवी, मुझे भी अपने से बढ़कर कोई दूसरा प्रिय नहीं है।'

इस वार्तालाप के बाद प्रसेनजित अपने प्रासाद से उतर कर जेतवन

आराम गये जहां भगवान विहार कर रहे थे। शास्ता के चरणों में बैठकर उन्होंने अपने और रानी मल्लिका के बीच हुयी बातचीत को अक्षरशः कह सुनाया। भगवान ने साधुवाद के साथ राजा-रानी के उद्‌गार का अनुमोदन किया। उसी समय भगवान के मुख से जो उदान निकला उसका हिंदी अनुवाद नीचे दिया गया है।

देखा चारों ओर प्रिय, अपने सा न कोय।
अपना हितकामी कभी, पर-भक्षक न होय।।

श्रद्धालु देवी मल्लिका

कोशलराज प्रसेनजित की रानियों में देवी मल्लिका का स्थान वास्तव में सर्वप्रमुख था। भगवान और भिक्षुसंघ का विश्वास प्राप्त करने के लिए भले ही राजा ने शाक्य कन्या वासभखत्तिया से ब्याह करके उसे औपचारिक रूप से अग्रस्थान प्रदान किया, पर इससे मल्लिका का महत्त्व घटा नहीं। वासभखत्तिया के जन्म की वास्तविकता का पता चलने पर उसे महाराज के कोप का भाजन होना पड़ा।

बुद्ध और धर्म दोनों के प्रति मल्लिका की रुचि और समझ गहरी थी। कोशलनरेश प्रसेनजित के निवेदन पर भगवान ने रानी मल्लिका और वासभखत्तिया को धर्म सिखाने की जिम्मेदारी स्थविर आनंद को सौंपी। कुछ दिनों बाद भगवान ने पूछा– 'आनंद, क्या उपासिकायें ठीक से धर्म सीख रही हैं?'

'हां भंते, सीख तो दोनों रही हैं, पर मल्लिका अच्छी तरह से ग्रहण करती हैं। वे ठीक से पाठ करती हैं और पाठ को मन में रखती हैं। वासभखत्तिया ऐसा कुछ नहीं करतीं।' इस पर भगवान ने एक सुंदर गंधयुक्त फूल की उपमा देकर मल्लिका के प्रयासों का अनुमोदन किया :

जैसे सुंदर फूल में, होवे मीठी गंध।
वैसे कथनी को करे, करनी से संपन्न।।

पर देवी मल्लिका का वह स्व-प्रेम स्वार्थी और संकीर्ण नहीं, बल्कि व्यापक और परमार्थ से युक्त था। उसका स्व-प्रेम केवल अपने तक सीमित नहीं था। वह भगवान के इस उपदेश का पालन करती थी कि

अपने से प्यार करनेवाला, अपनी भलाई चाहने वाला किसी दूसरे को न सतावे। इसका दृष्टांत स्वप्नभय से मुक्ति पाने हेतु राजा प्रसेनजित द्वारा आयोजित हिंसक यज्ञ कराने के संदर्भ में मिलता है। पुरोहित द्वारा भयमुक्ति का उपाय बताने पर राजा ने अपनी जान की रक्षा हेतु अनेक प्रकार के पांच-पांच सौ पशुओं को एकत्र कराया। यज्ञ में पशुओं की बलि देने हेतु सेवकों और जनता के बेटे-रिश्तेदारों को जबरदस्ती नियुक्त किया गया। इन लोगों के रुदन और विलाप को सुनकर देवी मल्लिका ने राजा से इसके बारे में जानना चाहा– 'महाराज, यह सब रोने-पीटने की कैसी आवाज है?' राजा ने अपना स्वप्न, अपनी जान को खतरा और उसकी रक्षा हेतु यज्ञ के आयोजन की बात बतायी। मल्लिका ने जैसे फटकारते हुये राजा से कहा– 'महाराज, आप इतने बड़े जनपद के स्वामी हैं, जरा बुद्धि से काम लीजिये। सोचिये, यह कभी संभव है कि एक की जान मारने से दूसरे की जान बच जाय? आप मूर्ख और लोभी पुरोहित के बहकावे में न आवें। चलिए, भगवान सम्यकसंबुद्ध से आपके स्वप्नों का फल और उसके निवारण का उपाय पूछें।'

मल्लिका भगवान के पास राजा को ले गयी। भगवान ने स्वप्नों का भेद राजा को बताया और हिंसक यज्ञ की व्यर्थता स्पष्ट करते हुये उसकी निंदा की। प्रसन्नचित्त राजा अपने महल को लौटे। सभी प्राणियों को बंधनमुक्त करने का आदेश दिया। बंधनमुक्त सेवक आदि मल्लिका की जय-जयकार करते हुये अपने घर चले। – 'चिरकाल तक जियें हमारी पूज्य देवी मल्लिका, जिन्होंने हम सबको हिंसा करने से रुकवाया।' इस बात की भिक्षुओं में चर्चा चलने पर भगवान ने कहा– 'भिक्षुओ, मल्लिका ने न केवल अभी अपनी प्रज्ञा द्वारा बलिपशुओं को जीवनदान दिलाया बल्कि पूर्वकाल में भी उसने ऐसा किया है।' इस प्रकार भगवान ने देवी मल्लिका के आचरण की प्रशंसा और अनुमोदन किया।

बुद्ध और उनकी चमक

एक दिन कोशलराज प्रसेनजित वस्त्राभूषण-माला-गंध से सजधज कर भगवान की सेवा में पहुंचे। उस समय स्थविर कालुदायी ध्यानस्थ होकर सभा के अंत में बैठे थे। स्थविर का नाम ही ऐसा था, पर उसके शरीर का रंग सोने जैसा था। उस समय सूरज डूब रहा था और चंद्रमा का उदय हो रहा था। स्थविर आनंद ने डूबते सूर्य और उगते चंद्र के

प्रकाश को देखते हुये, राजा की शरीर-कांति, स्थविर कालु की शरीर-कांति और तथागत की शरीर-कांति का भौतिक दृष्टि से अवलोकन किया। वहां उन सभी कांतियों से आगे भगवान की कांति निकल गयी। आनंद ने भगवान की वंदना करते हुये कहा– 'भंते, आज सबकी कांति का अवलोकन करने पर मुझे लगा कि भगवान की कांति सर्वोपरि है।'

इस पर शास्ता ने आनंद के कथन का अनुमोदन करते हुये कहा–

दिन में सूरज, भूषित भूपति, चंदा चमके रात।
ब्राह्मण चमके ध्यान में, बुद्ध चमके दिन-रात।।

शास्ता का गौरव

उन दिनों भगवान श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार कर रहे थे। कोशलनरेश भगवान के पास आये। उन्होंने देखा कि पहले से एक उपासक भगवान की सेवा में उपस्थित है। राजा को देखकर भी उपासक ने उनके प्रति कोई सम्मान या अभिवादन का भाव व्यक्त नहीं किया, उठकर खड़ा भी नहीं हुआ। उपासक का यह आचरण राजा को पसंद नहीं पड़ा। उसके चेहरे पर अप्रसन्नता का भाव देखकर शास्ता ने कहा– 'महाराज, यह छत्रपाणि उपासक बहुश्रुत है, अनागामी अवस्था को प्राप्त होकर कामनाओं के प्रति वीतराग है।' शास्ता के मुख से उपासक की प्रशंसा सुनकर राजा की अप्रसन्नता कुछ घटी। वे समझ गये कि यह कोई सामान्य उपासक नहीं है। राजा ने उपासक से पूछा– 'भाई, तुम्हें किस वस्तु की आवश्यकता है?' 'सब ठीक है, महाराज।' फिर भगवान ने धर्मकथा द्वारा प्रसेनजित को प्रेरित एवं उत्साहित किया। प्रसन्न मन राजा वहां से घर आये।

कुछ दिनों के बाद राजा अपने महल की ऊपरी मंजिल पर खड़े थे। उन्होंने उपासक छत्रपाणि को कुछ दूरी पर आते हुये देखा तो राजसेवक को भेजकर उसे बुलवाया। छाता और जूतों को एक किनारे छोड़कर राजा का अभिवादन करके वह एक ओर खड़ा हो गया। राजा को पुरानी घटना याद आ गयी। उन्होंने पुछा– 'उपासक, छाता और जूते क्यों निकाल दिये?'

'महाराज, राजा बुला रहे हैं इसलिए निकाल दिये।'

'आज हमारा राजभाव आपको ज्ञात हुआ है?'

'देव, हमेशा हम आपका राजभाव समझते हैं।'

उस दिन की घटना याद दिलाते हुये राजा ने पूछा– 'तो उस समय मुझे देखकर किसी प्रकार का अभिवादन क्यों नहीं किया?'

'महाराज, मैं सबसे बड़े राजा की सेवा में बैठा था। प्रदेश राजा को देखकर खड़ा होने से शास्ता के प्रति अगौरव होता, इसलिए मैं उठा नहीं। देव, आप कोशलराज हैं, पर शास्ता धर्मराज। सारे लोक धर्म के क्षेत्र में आते हैं।'

उपासक का उत्तर राजा को जंचा। उनके मन की टीस समाप्त हो गयी।

प्रशंसितों के प्रशंसित

एक बार भिक्षुओं में इस बात की चर्चा चली कि राजा, आचार्य, उपासक, परिव्राजक, स्थविर, देव आदि में कौन किसके द्वारा प्रशंसित है? किसके प्रशंसक अधिक हैं?

एक भिक्षु ने कहा– 'राजा प्रसेनजित कोशलों द्वारा प्रशंसित हैं, बिम्बिसार मागधों द्वारा प्रशंसित हैं और वैशालिक लिच्छवी-वज्जियों द्वारा। इस प्रकार राजा अपने जनपदवासियों द्वारा प्रशंसित हैं।'

दूसरे ने कहा– 'भंते, चंकी आदि ब्राह्मण गणाचार्य सैकड़ों गणों द्वारा प्रशंसित हैं, अनाथपिण्डिक आदि उपासक सैकड़ों उपासकों द्वारा प्रशंसित, विशाखा आदि उपासिकायें सैकड़ों उपासिकाओं द्वारा।'

इसी क्रम में तीसरे ने जोड़ा– 'ऐसे ही सुकुलदायी आदि परिव्राजक सैकड़ों परिव्राजकों द्वारा प्रशंसित हैं और सारिपुत्त आदि महास्थविर सैकड़ों भिक्षुओं द्वारा।'

चौथा भिक्षु मानवलोक के बाहर निकल गया। उसने कहा– 'शक्र आदि देवों की सोचें जो हजारों देवों द्वारा प्रशंसित हैं और महाब्रह्मा आदि जो देवों और ब्रह्माओं द्वारा।'

यह सब सुनते हुये एक अनुभवी भिक्षु ने कहा– 'आयुष्मानो, आपलोगों ने जो कुछ कहा ठीक वैसा ही है, पर उक्त सभी प्रशंसितों की प्रशंसा आंशिक है, खंडित है, सांप्रदायिक है। एक दशबल ही ऐसे हैं जिनकी प्रशंसा, जिनका कीर्तन, जिनका वंदन, जिनका अभिनंदन

सभी करते हैं। क्योंकि भगवान सम्यकसंबुद्ध न तो एक समूह के हैं, न ही एक गण के। न तो एक वर्ग के हैं, न ही एक संप्रदाय के। न तो एक राज्य के हैं, न ही एक क्षेत्र के। वे मनुष्यों के अग्र हैं, प्राणियों के अग्र हैं, लोकों के अग्र हैं, सृष्टि के अग्र हैं, वे अग्रों के अग्र हैं, वे महा अग्र हैं। इसलिए उनकी प्रशंसा सभी अग्र, सभी प्रशंसित करते हैं।'

इतना सुनते ही साधुवाद के साथ सभी भिक्षुओं ने इसका अनुमोदन किया।

धर्म की सुधर्मता

एक समय कोशल राज्य में हत्यारे डाकू अंगुलिमाल का आतंक छाया था। वह लोगों को जान से मार कर उनकी अंगुलियों की माला पहनता। उसके इस अत्याचार से कोशलवासी त्रस्त हो गये थे। उसके भय और आतंक से लोग ग्राम और निगम छोड़कर सुरक्षित स्थानों की खोज में भागने लगे थे। त्रस्त जनता कोशलनरेश के राजद्वार पर एकत्र होकर अपनी रक्षा के लिए गुहार करने लगी। हत्यारे अंगुलिमाल को पकड़ने के लिए पांच सौ घुड़सवारों के साथ राजा दोपहर में निकल पड़े। सोचा पहले भगवान से मिल कर आशीर्वाद ले लें। सेना सहित राजा को देखकर भगवान ने पूछा– 'महाराज, क्या किसी शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया है?'

'नहीं भगवन, ऐसी बात नहीं है। निर्दयी डाकू अंगुलिमाल लोगों की अकारण हत्या कर रहा है। उसके भय से लोग ग्राम-निगम छोड़कर भागने लगे हैं, जनपद उजाड़ होने लगा है। उसी के निवारण के लिए जा रहा हूं।'

भगवान ने संयत स्वर में पूछा– 'यदि महाराज, आप अंगुलिमाल को भिक्षुवेश में प्रव्रजित हुआ, शीलवान, ब्रह्मचारी और धर्मात्मा के रूप में देखें तो उसको क्या करेंगे?'

'भंते, हम भोजन-वस्त्र, शयनासन आदि से उसका आदर-सत्कार और रक्षा करेंगे। पर भगवन, वह पापी ऐसा संयमी और शीलसंपन्न कैसे हो जायगा?'

भगवान से थोड़ी दूर पर अंगुलिमाल बैठा था। उसकी ओर संकेत करते हुये शास्ता ने कहा– 'महाराज, यह है अंगुलिमाल।'

अंगुलिमाल की ओर देखकर राजा भयभीत हो गये। वे कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध रह गये। तब भगवान ने उन्हें आश्वस्त किया– 'महाराज, डरें नहीं, निर्भय हों।'

भगवान के ऐसा कहने पर कोशलनरेश अंगुलिमाल के पास गये। उसके पिता-माता का नाम और गोत्र पूछा। अंगुलिमाल के बताने पर राजा ने भोजन, वस्त्र, आसन और औषधि आदि से उनकी सेवा करने की इच्छा व्यक्त की।

विनम्रतापूर्वक अंगुलिमाल ने कहा– 'महाराज, मेरे पास इस समय यह सब कुछ है।'

प्रसेनजित भगवान के पास आये। अंगुलिमाल को सुधरे रूप में देखकर चकित कोशलनरेश के मुंह से ये शब्द निकल पड़े– 'आश्चर्य भंते! अद्‌भुत भंते!! कैसे भंते, आप अदांतों का दमन और अशांतों का शमन करते हैं। भगवन, जिनको हम दंड से, शस्त्र से दमन नहीं कर सके, उनको भगवान ने बिना दंड के, बिना शस्त्र के दमन कर दिया। धन्य है धर्म की सुधर्मता!

अध्याय-६

राजा प्रसेनजित

यह स्वाभाविक है कि किसी भी राजकुमार का राज्याभिषेक हो जाने के बाद शासक और राजा के रूप में उसकी जिम्मेदारी काफी बढ़ जाती है। प्रसेनजित के साथ भी यही हुआ। विहार या आराम से घर जाने के लिए भगवान से विदा लेते समय वह प्रायः कहता, 'भंते, अब चलें। अभी बहुत काम करना है।' इससे उनके कार्य-बोझ और राज्य के प्रति उनकी जिम्मेदारी बोध का पता चलता है। इस अध्याय की घटनायें उनके राज-काज के संबंध में ही प्रकाश डालती हैं।

शाक्यकुल में ब्याह

प्रत्यमित्र (शत्रु) को जीतनेवाले होने के कारण और कोशलराज्य का अधिपति होने के कारण वे कोशलराज प्रसेनजित कहलाये। प्रारंभ में जब वे भगवान और भिक्षुसंघ के संपर्क में आये तब भिक्षुओं ने अपने प्रति राजा में श्रद्धा और विश्वास का अभाव देखकर उनके यहां जाना बंद कर दिया। इस विषय में राजा ने अमात्यों से मंत्रणा की। उन्होंने विश्वास प्राप्त करने का यह उपाय बताया कि महाराज सम्यकसंबुद्ध के रिश्तेदार की बेटी को अपनी रानी बना लें। मंत्रियों की बात राजा को जंची। उन्होंने सोचा, ऐसा होने पर भिक्षु लोग सम्यकसंबुद्ध का रिश्तेदार समझकर मेरे यहां नियमित रूप से आते रहेंगे। तब राजा ने इस आशय का संदेश शाक्यों के यहां भेजा। प्रसेनजित के प्रस्ताव पर शाक्यों ने विचार किया– 'राजा प्रसेनजित हमारे समान वंश का नहीं है, वह हमसे नीच वंश का है। पर, यदि हम उसे अपनी बेटी नहीं देते हैं, तो वह हमारा नाश कर सकता है।' ऐसे में उन्होंने एक युक्ति निकाली। महानाम की दासीपुत्री वासभखत्तिया का ब्याह राजा के साथ करने का निश्चय किया। दूत से उन्होंने कहा– 'महाराज का प्रस्ताव हमें स्वीकार है, सम्यकसंबुद्ध के चाचा महानाम की अति रूपवती कन्या को हम राजा के लिए देंगे।'

दूत की बातें सुनकर कोशलनरेश ने कहा– 'ऐसा है तो ठीक है।

पर क्षत्रिय बहुत चालाक होते हैं। कहीं दासी की बेटी को न भेज दें। इसलिए पिता के साथ एक थाली में भोजन करनेवाली लड़की होनी चाहिये।' दूत ने राजा प्रसेनजित का संदेश शाक्यों को बताया। महानाम ने इसे स्वीकार कर लिया।

बेटी को वस्त्राभूषण से अलंकृत करवा अपने भोजन के साथ भोजन करने का अभिनय करके दूतों को वापस कर दिया। दूतों की बात सुनकर राजा संतुष्ट हुए और वासभखत्तिया के राजमहल में आने पर उसका विशेष रूप से अभिषेक करवाया।

शीघ्र ही वासभखत्तिया ने एक सुंदर से बेटे को जन्म दिया, जिसका नाम पड़ा बिट्टूभ। धीरे-धीरे बिट्टूभ बड़ा होने लगा। दूसरे बच्चों के ननिहाल से खिलौने आदि उपहार आते, तो उन्हें देखकर बिट्टूभ भी अपने नाना-नानी के बारे में पूछता। – 'मां मेरे लिए कुछ नहीं आता, तेरे मां-बाप नहीं हैं क्या? मां उसे भुलवाती– 'वे लोग बहुत दूर रहते हैं, इसलिए कुछ भेज नहीं पाते।' जब बिट्टूभ सोलह वर्ष का हो गया तब ननिहाल जाने की बात करने लगा। मां ने उसे बहुत मना किया पर वह जिद कर बैठा। तब वासभखत्तिया ने शाक्यों के नाम पत्र भेजकर सचेत किया– 'वे लोग बिट्टूभ के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव न दिखायें। तभी मैं यहां सुखी रहूंगी।' फिर माता-पिता की अनुमति से वह दलबल के साथ कपिलवस्तु पहुंचा।

कपिलवस्तु के सभागार में शाक्यों ने बिट्टूभ को ठहराया। वंशाभिमानी शाक्यों ने एक चाल चली। बिट्टूभ से बड़े लोगों को तो कपिलवस्तु में ही रहने दिया, पर छोटे लोगों को दूर जनपद में भेज दिया। सभी ज्येष्ठों से परिचय कराते हुये शाक्यों ने राजकुमार से अभिवादन कराया। सबको प्रणाम करते हुये बिट्टूभ ने पूछा– 'क्यों मुझे प्रणाम करनेवाला कोई नहीं है?' मीठे शब्दों में शाक्यों ने कहा– 'बेटा, सभी कनिष्ठ जनपद को चले गये हैं।' फिर बिट्टूभ ने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। कुछ दिनों तक रहकर राजकुमार अपने लोगों के साथ वापस आने को तैयार हुआ। इसी बीच एक दासी बिट्टूभ के बैठने वाले आसन को दूध से धोने लगी। बिट्टूभ के एक सैनिक द्वारा पूछने पर उसने बताया कि दासीपुत्री वासभखत्तिया का बेटा बिट्टूभ इस पर बैठा था, इसलिए यह फलक अपवित्र हो गया है। इस घटना को

जानने पर बिट्टूभ बड़ा ही क्षुब्ध हुआ। उसने क्रोध में तत्क्षण मन ही मन यह निश्चय किया, 'इन लोगों ने मेरे बैठने के आसन को दूध से धोया है, भविष्य में राजा होने पर मैं इस आसन को इनके रक्त से धोऊंगा।' जब राजा प्रसेनजित को वासभखत्तिया की वास्तविकता का पता चला तो उन्होंने रानी और उसके बेटे को दिये गये सारे राजसी संरक्षण और सुविधायें वापस ले लीं। उन्हें केवल दास-दासियों को दी जानेवाली सुविधायें दिलवायीं।

कुछ दिनों बाद महाराज के घर शास्ता पधारे। राजा ने पूरी बात भगवान से बतायी– 'भंते, आपके रिश्तेदारों ने मेरे साथ धोखा किया। उन्होंने एक दासीपुत्री से मेरा ब्याह करा दिया। इसलिए मैंने उसे और उसके बेटे को दिये गये राजसी संरक्षण को काटकर, अब उन्हें केवल दास-दासियों को दी जानेवाली सुविधायें दिलवायी हैं।'

कोशलनरेश से असहमति व्यक्त करते हुये शास्ता ने कहा, 'महाराज, शाक्यों ने उचित नहीं किया। उन्हें समान जाति की कन्या देनी चाहिये थी। फिर भी महाराज, मैं कहता हूं कि वासभखत्तिया क्षत्रिय राजकुमारी है। क्षत्रिय राजा के घर उसका ब्याह हुआ है, अभिषेक हुआ है। कुमार बिटटूभ भी क्षत्रिय राजा से पैदा हुआ है। मां का गोत्र नहीं, पिता का गोत्र प्रमाण होता है। प्राचीन काल में भी ऐसा हुआ था।' ऐसा कहकर भगवान ने पूर्वकाल का एक दृष्टांत सुनाया। भगवान के धर्मकथन से प्रभावित और आनंदित हो राजा ने वासभखत्तिया और उसके बेटे की सभी राजसी सुविधायें और संरक्षण पूर्ववत बहाल कर दिये।

श्रेष्ठी को अपने राज्य में बसाना

एक दिन कोशलनरेश प्रसेनजित ने सोचा– उसके बहनोई मगधराज बिम्बिसार के राज्य में पांच महापुण्यवान रहते हैं। पर मेरे राज्य में एक भी वैसा नहीं है। राज्य की समृद्धि के लिए ऐसे पुण्यवान श्रेष्ठी का होना आवश्यक है। क्यों न मगधनरेश से एक मांगकर ले आऊं?'

इस निश्चय के साथ प्रसेनजित राजगृह पहुंचे। वहां उनका यथोचित स्वागत-सत्कार हुआ। कोशलनरेश ने अपने आने का उद्देश्य बताया– 'आपके पास पांच महापुण्यवान श्रेष्ठी हैं। मेरे यहां ऐसा एक भी नहीं। इनमें से एक मुझे दें। उसे मैं अपने राज्य में बसाऊंगा।'

रिश्तेदार और मित्र राजा की बात थी। बिम्बिसार ने अमात्यों से परामर्श किया। अंत में मेण्डक महाश्रेष्ठी के पुत्र धनंचय को देने का निश्चय हुआ।

कोशलराज प्रसेनजित बड़े प्रसन्न हुए। श्रेष्ठी धनंचय के आराम का ख्याल रखते हुये उसे अपने साथ लेकर चले। रास्ते में एक स्थान पर दोनों ने विश्राम किया। वहां धनंचय ने बड़ा ही सुख और आराम अनुभव किया। उसने पूछा– 'महाराज, यह किसका राज्य है?'

'श्रेष्ठी, मेरा ही।'

'देव, मेरा परिवार बड़ा है। यदि आपका आदेश हो तो मैं यहीं वास करूं।'

राजा ने साधुवाद करते हुये श्रेष्ठी की बात मान ली। वहां नगर बसाने में श्रेष्ठी की भरपूर मदद की। श्रेष्ठी की इच्छा के अनुसार उस नगर का नाम साकेत पड़ा।

न्यायालय में झूठ

न्यायालय के अनुभव से खिन्न कोसलराज प्रसेनजित ने भगवान से कहा 'भंते, विवादों के निपटारे के संबंध में कचहरी में लोग बहुत झूठ बोलते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य-धनाढ्य, संपन्न, मालदार, धन-धान्य-युक्त, अपार वित्त-उपकरण-संपन्न, इफरात सोना-चांदी, हीरा-मोती-युक्त सबको अपने सांसारिक लाभ के लिए झूठ बोलते हुये पाता हूं। झूठ बोलने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं, लज्जा नहीं, लोकोपवाद से भी वे नहीं डरते। भगवन, इसी से न्यायालय कार्य मैंने छोड़कर अमात्यों के जिम्मे कर दिया।'

'महाराज, ऊंचे कुल के जो क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य-धनाढ्य, श्रीसंपन्न झूठ बोलते हैं, उनका चिरकाल तक अहित होता है।'

'भंते, वह कैसे?'

भगवान ने उत्तर में यह कहा–

भोगों में अंधा बने, करे नहीं परवाह।
कांटे में फंस मीन-सा, पावे दुःख अथाह।।

दोषयुक्त सत्कार

एक बार राजा प्रसेनजित ने अपनी सेना में नये योद्धाओं की नियुक्ति की। नियुक्ति के उपरांत उनका अच्छी तरह सत्कार-सम्मान किया। पर इस अवसर पर परंपरागत योद्धाओं का सत्कार-सम्मान न करके उनकी उपेक्षा की। इसी बीच उनके राज्य में विद्रोह हो गया। पुराने योद्धाओं ने यह सोचकर युद्ध में भाग नहीं लिया कि सत्कारप्राप्त नये योद्धा युद्ध करेंगे। राजा ने सोचा कि पुराने योद्धा युद्ध करेंगे। पर ऐसा हुआ नहीं। राजा युद्ध में पराजित हो गये। विचार करने पर वह समझ गये कि परंपरागत योद्धाओं की उपेक्षा होने के कारण वे युद्ध से अलग रहे और युद्ध नहीं किया।

राजा ने दशबल से पूछने का निश्चय किया– 'भंते, नये योद्धाओं के स्वागत और पुरानों की उपेक्षा के कारण केवल मैं ही पराजित हुआ हूं या पूर्वकाल में दूसरे राजाओं के साथ भी ऐसा हुआ है?'

'महाराज, ऐसी घटनायें प्राचीन काल में भी घटी हैं। परंपरागत योद्धाओं की उपेक्षा करके नवागंतुकों का सम्मान करने पर पूर्वकाल में राजा की स्थिति आप ही जैसी हुयी है। महाराज, ऐसा सत्कार दोषपूर्ण है।'

शास्ता के दृष्टांत देने पर राजा अपनी भूल अच्छी तरह समझ गये।

गर्म की रात

एक बार अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ अजातशत्रु ने कोशलराज के विरुद्ध काशी क्षेत्र पर धावा बोल दिया।

प्रसेनजित ने भी अपनी भारी सेना के साथ उसका सामना किया। घमासान युद्ध हुआ। पर कोशलनरेश हार गये।

इस घटना को लेकर भिक्षुओं में परस्पर वार्तालाप हो रहा था। शास्ता के आने पर भिक्षुओं ने उनसे बताया– 'कोशलराज प्रसेनजित अजातशत्रु से हार कर श्रावस्ती लौट आये।'

भगवान ने कहा– 'भिक्षुओ, अजातशत्रु जीत गया तो क्या, वह बुरे लोगों की संगत में रहकर बुराइयों को ग्रहण करता है। पर कोशलनरेश भले लोगों की संगत में रहते हैं और अच्छाइयों को ग्रहण करते हैं। फिर

भी, पराजित कोशलनरेश की यह रात भारी गम में बीतेगी।'

निधि अर्जन

श्रावस्ती में एक महाधनवान और संपत्तिशाली कुटुंबिक (परिवार का मुखिया) रहता था। चित्त से मल-विकार दूर कर धर्म के प्रति श्रद्धावान और प्रसन्न होकर वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता था। एक दिन उसने भगवान बुद्ध सहित प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया। उसी समय राजा प्रसेनजित को कुछ धन की आवश्यकता पड़ी। उसने एक राजपुरुष को यह कहकर कुटुंबिक के पास भेजा कि तुम जाकर उसे मेरे पास ले आओ।

राजा का आदेश सुनाते हुये राजपुरुष ने कुटुंबिक से कहा– 'चल, तुझे महाराज बुलाते हैं।'

अति श्रद्धापूर्वक भगवान को भोजन परोसते हुये कुटुंबिक ने कहा– 'अभी मैं भगवान और भिक्षुसंघ की सेवा निधि अर्जित करता हुआ खड़ा हूं। महाराज से कहना कि बाद में आऊंगा।'

भोजन-दान समाप्त होने पर कुटुंबिक की पुण्य संपदा को भगवान ने परमार्थ-निधि बताते हुये उसका अनुमोदन किया।

देशना के अंत में वह उपासक बहुत लोगों के साथ स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद कुटुंबिक महाराज के पास पहुंचा और पूरी बात कह सुनायी। कोशलनरेश ने अति प्रसन्नता एवं संतोष व्यक्त करते हुये कहा– 'साधु, गृहपति साधु, मेरे जैसे व्यक्तियों से भी न लिए जानेवाली निधि तूने अर्जित की।'

इस प्रशंसा के साथ राजा ने उसका भरपूर सत्कार किया।

भिक्षुणी-निवास

उप्पलवण्णा श्रावस्ती के एक श्रेष्ठी की पुत्री थी। हजारों कल्पों तक अपने पूर्वजन्मों में पुण्य करती हुयी वह भगवान गौतम बुद्ध के शासनकाल में अति संपन्न कुल में उत्पन्न हुयी। वह अति रूपवती थी। ब्याह योग्य होने पर अनेक राजाओं और श्रेष्ठियों ने उसके पिता के पास यह संदेश भेजा– 'अपनी बेटी हमें दे दो।' ऐसी स्थिति में श्रेष्ठी बड़े ही असमंजस में पड़ा– 'किसे दें, किसे न दें?' उसे एक उपाय सूझा। उसने बेटी से

पूछा– 'बेटी तुम प्रव्रजित हो सकती हो?' बेटी का यह अंतिम जन्म होने के कारण पिता की बात उसे बड़ी प्रिय लगी। – 'हां पिताजी, मैं होऊंगी।' बड़े ही सत्कार के साथ श्रेष्ठी पुत्री को भिक्षुणी-निवास ले गया। उप्पलवण्णा ने प्रव्रज्या ले ली। प्रव्रजित होने के थोड़े ही दिनों बाद प्रयत्नपूर्वक साधना करती हुयी वह क्षीणास्रव हुयी। कालांतर में विशिष्ट ज्ञान के साथ वह अर्हत हुयी।

अब उसी क्षेत्र के अंधवन में उसके लिए कुटी और मंच बनाया गया। वहीं वह रहने लगी। एक दिन वह श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए गयी। उसका ममेरा भाई नन्द माणव गृहस्थकाल से ही उस पर आसक्त था। थेरी उप्पलवण्णा के कुटी से बाहर जाने के बाद वह चुपके से कुटी में प्रवेश कर चोरों की तरह मंच के नीचे छिप गया। भोजन के बाद थेरी कुटी में आयी और अंदर से द्वार बंद कर लिया। ज्यों ही वह अपने मंच पर बैठी नन्द माणव नीचे से निकलकर मंच पर चढ़ गया। थेरी के बार-बार, 'मत नाश को प्राप्त हो मूर्ख, मत नाश को..... 'कहने पर भी उसने नहीं माना। इस घोर पाप के फलस्वरूप नन्द तत्क्षण भूमि में धंस कर अवीचि नरक में पैदा हुआ। थेरी ने भिक्षुणियों से इस घटना के बारे में बताया। भिक्षुणियों ने भिक्षुओं से कहा, फिर भिक्षुओं ने भगवान से बताया। भिक्षुओं को संबोधित करते हुये भगवान ने कहा–

जब तक पाप नहीं फलता, मूरख मधु समझता है।
फल देता दुष्कर्म, मूर्ख तब दुःख में डूबा रहता है।।

बाद में शास्ता ने कोशलनरेश से कहा– 'इस शासन में कुलपुत्र और कुलपुत्रियां अपने रिश्तेदारों और धन-संपत्ति को त्याग कर प्रव्रजित होते हैं और जंगल में रहते हैं। ऐसे में राग, काम और वासना के वशीभूत लोग अहंकार से प्रेरित हो उन्हें कष्ट पहुंचाते हैं और उनके ब्रह्मचर्य पालन में बाधा डालते हैं। इसलिए भिक्षुणीसंघ के लिए नगर के अंदर ही निवास-स्थान बनना चाहिये।'

राजा ने 'साधु-साधु' कहकर बिना किसी प्रकार का विलंब किये नगर में एक ओर भिक्षुणी संघ के लिए आराम का निर्माण कराया। उसके बाद से भिक्षुणियां जंगल में न रह कर नगर-गांव के अंदर रहने लगीं।

कस्सप का लालन-पालन

पूर्ववर्ती बुद्धों के शासनकाल में पुण्य-संचय करते हुये कस्सप देवलोक और मनुष्यलोक में संसरण करता रहा। भगवान पदुमुत्तर के समय में उसने ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर विवेकावस्था प्राप्त की। इस प्रकार सुगतियों में संसरण करता हुआ भगवान गौतम बुद्ध के शासनकाल में उसने श्रेष्ठिपुत्री के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। विवाह के कुछ ही दिनों बाद श्रेष्ठिपुत्री ने प्रव्रज्या ले ली। इसके पहले कश्यप मां के पेट में आ चुका था, पर इस स्थिति की जानकारी मां को नहीं हो सकी। भिक्षुणी बनने के बाद उसके गर्भिणी होने की बात स्पष्ट हुयी। गर्भ की बात को लेकर भिक्षुणियों में विवाद पैदा हो गया। इसपर भगवान ने महाश्राविका विशाखा द्वारा इसकी जांच करायी। गर्भ गृहस्थकाल का पाया गया। गर्भ के परिपक्व होने पर भिक्षुणी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया।

एक दिन कोशलनरेश प्रसेनजित ने भिक्षुणीनिवास के पास से जाते समय बालक की आवाज सुनी। उसने जानना चाहा कि यह कौन है? अमात्य ने बताया– 'देव, उस तरुणी भिक्षुणी को पुत्र हुआ है, जिसके गर्भ के संबंध में उठे विवाद को दूर करने के लिए बनी परिषद में आप भी उपस्थित थे। यह आवाज उसी बच्चे की है।'

'भाई, भिक्षुणियों को बच्चे के पालन-पोषण में कठिनाई होगी। इसलिए इस बालक का पालन-पोषण हमारे यहां होगा।' भिक्षुणी-पुत्र का लालन-पालन राजकुमार की तरह हुआ। नाम संस्कार के दिन उसे कस्सप नाम दिया गया।

बड़ा होने पर कस्सप को अलंकृत कराकर राजा शास्ता के पास ले गये, और प्रव्रजित कराया। बचपन में ही प्रव्रजित होने के कारण भगवान द्वारा 'कस्सप को बुलाओ, यह फल कस्सप को दो.....' आदि कहे जाने पर, प्रश्न होता कौन-सा कस्सप? उत्तर होता 'कुमार कस्सप'। इस प्रकार कुमार कस्सप नाम पड़ने के कारण और राजा द्वारा पोषित होने के कारण उसे कुमार कस्सप कहा जाने लगा। एक दिन अंधवन में उसके साधनारत रहते हुये उसके पास एक हितैषी देवता आया। उसने कुमार कस्सप को कुछ प्रश्न बताये जिन्हें भगवान से पूछने के लिए कहा। कुमार कस्सप ने वैसा ही किया। प्रश्नोत्तर के अंत में उसने अर्हत्व

अवस्था प्राप्त की। भगवान ने उसे चित्रकथिक भिक्षुओं में अग्र स्थान दिया।

पुरोहितपुत्र बावरी

ब्राह्मण बावरी कोशलनरेश के पुरोहित थे। अपने पूर्वजन्म में काष्ठवाहन राजा के रूप में भगवान कस्सप के प्रति कुशल कर्म करने के फलस्वरूप वे अनेक जन्मों में सुगतियों में संसरण करते रहे। भगवान गौतम बुद्ध के शासनकाल में वे कोशलनरेश के आचार्यकुल में जनमे। बावरी तीन महापुरुष लक्षणों से युक्त और तीन वेदों में पारंगत थे। पिता की मृत्यु के बाद वे राजपुरोहित के पद पर आसीन हुए। उनके पूर्वजन्मों के हजारों सहयोगी, जिनमें मोघराज माणव प्रमुख था, श्रावस्ती के अन्य ब्राह्मण कुलों में उत्पन्न हुये और उन्हीं से विद्या तथा शिल्प सीखे। महाकोशल के देहावसान के बाद जब प्रसेनजित राजा बने तब बावरी उनके भी पुरोहित बने रहे। पिता द्वारा प्रदत्त उनकी सभी राजकीय सुविधायें प्रसेनजित ने चालू रखीं।

एक दिन बावरी ने राजा को सूचित किया– 'महाराज, मैं प्रव्रजित होना चाहता हूं।'

'आचार्य, आपके रहने पर मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरे पिता जीवित हैं। कृपया आप प्रव्रज्या न लें।'

पर बावरी अपने को रोक न सके। राजा भी लाचार हो गये। उन्होंने निवेदन किया– 'आचार्य, प्रव्रजित होकर आप राजकीय उद्यान में ही निवास करें जिससे वहां प्रातः और सायं आपके दर्शन कर सकूं।'

राजा के इस निवेदन को बावरी ने स्वीकार कर लिया। अपने हजारों शिष्यों के साथ वे राजोद्यान में प्रव्रजित जीवन बिताने लगे। राजा ने उनके लिए चार सेवायें प्रदान करना जारी रखा– भोजन, चीवर, आवास और औषधि। प्रतिदिन सुबह-शाम राजा उनकी सेवा में उपस्थित होते।

जल में हंसखेल नहीं

देवी मल्लिका के साथ राजा प्रसेनजित राजप्रासाद की ऊपरी मंजिल पर खड़े थे। वहां से उन्होंने देखा कि कुछ भिक्षु अचिरवती नदी

के जल में खेल रहे हैं। यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। मल्लिका से कहा– 'देवी, अर्हत लोग पानी में खेल रहे हैं।'

'महाराज, निश्चय ही भगवान ने इसके बारे में नियम नहीं बनाया है या यह हो सकता है कि ये भिक्षु अल्पज्ञ हों।'

राजा ने सोचा– 'भगवान से इस बारे में मेरा कुछ बताना ठीक नहीं होगा। अच्छा हो कि भगवान स्वयं जान जायं, कि भिक्षु लोग नदी के पानी में खेल रहे थे। जान जाने पर अवश्य इस बारे में नियम बनायेंगे।'

प्रसेनजित को एक उपाय सूझा। उन भिक्षुओं को बुलवाया और उन्हें एक बड़ा गुड़पिंड देकर कहा– 'भंते, यह गुड़पिंड आपलोग भगवान को दे दें। भिक्षुलोग पिंड को लेकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान के पास आये। गुड़पिंड समर्पित करते हुये बोले– 'भंते, इसे कोशलराज ने भगवान की सेवा में भेजा है।'

भगवान समझ गये, पूछा– 'तुमलोगों ने राजा को कहां देखा?'

'अचिरवती नदी के जल में हमलोगों को खेलते हुये देखकर राजा ने बुलवाया।'

यह सुनकर भगवान ने जल में हंसखेल करने पर भिक्षुओं की निंदा की। उन्हें संबोधित करते हुये ऐसे खेल के दुष्परिणाम बताये और यह नियम बनाया-

'जल में हंसखेल का आचरण करने पर विनय उल्लंघन का दोष होगा।'

महामात्य को होश

संतति, राजा प्रसेनजित का महामात्य और प्रतिरक्षा संबंधी मामलों का विशेषज्ञ था। एक बार कोशल के सीमा-प्रदेश पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया जिसका मुकाबला करने के लिए राजा ने महामात्य संतति को भेजा। अपनी बुद्धि और रण-कौशल से शत्रुओं को पराजित कर महामात्य श्रावस्ती आया। जीत की इस खुशी में राजा प्रसेनजित ने संतति को सात दिनों के लिए समस्त कामभोगों की छूट के साथ राजगद्दी दे दी। इसके साथ ही सारे शहर में खुशियां मनायी जाने लगीं। सात दिनों तक महामात्य सुरा-सुंदरी में मस्त! उत्सव के अंतिम दिन भोग की निःसारता

के प्रति उसे होश जागा। स्नानादि से निवृत्त हो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह भगवान के पास चला। शास्ता उस समय भिक्षा के लिए निकल रहे थे। उसे देख कर मुस्कराये। भगवान की मुस्कान का अर्थ आनंद समझ गये। उसने संतति से भगवान की कुटी के पास प्रतीक्षा करने के लिए कहा। भिक्षा से लौटने पर शास्ता ने उसे अनेक कथाओं के साथ धर्मोपदेश दिया। उपदेश के अंत में महामात्य अर्हत हुए।

चैन की नींद

काशी राज्य को लेकर मामा-भांजे– प्रसेनजित और अजातशत्रु में प्रायः उठा-पटक होती रहती थी। अजातशत्रु तरुण और समर्थ था, पर प्रसेनजित बूढ़ा हो चला था। वह हार जाता। लगातार कई बार हारने के बाद उसने अमात्यों से अपनी जीत का उपाय पूछा। अमात्यों ने बताया कि भिक्षु लोग मंत्रणा में पटु होते हैं। इस विषय में उनका विचार जानना चाहिये। इस हेतु राजा ने गुप्तचरों की नियुक्ति की। उन्हें आदेश दिया कि वे इस बारे में भिक्षुओं की बातें सुनें और मुझे बतावें।

उस समय रात में दो वृद्ध स्थविर धनुग्गह तिस्स और उत्तर आपस में बातें कर रहे थे। स्थविर तिस्स ने कहा, 'यह कोशलनरेश केवल खाना जानता है। युद्ध में इसके हारने का ही समाचार मिलता है।'

'तो भंते, उसे क्या करना चाहिये?'

'आयुष्मान, युद्ध में तीन तरह के व्यूह होते हैं– पद्म, चक्र और शकट। अजातशत्रु को पकड़ने के लिए शकट व्यूह की रचना करनी चाहिये। पर्वतों की आड़ में शक्तिशाली सैनिकों को दोनों ओर छिपाकर आगे कमजोर सैनिकों को भेजना चाहिये। कमजोर सैनिकों को हराते हुये जब शत्रुसेना आगे बढ़ पर्वतों के बीच में प्रवेश करे तब दोनों ओर की छिपी शक्तिशाली सेना शत्रु पर टूट पड़े और प्रवेश मार्ग बंद करके उसे चारों ओर से घेर ले। फिर जाल में फंसी मछली की तरह सभी को बंदी बना ले।

स्थविरों के वार्तालाप को चर पुरुषों ने राजा को बताया। इस बार प्रसेनजित ने भारी सेना के साथ काशी राज्य पर आक्रमण किया और शकट व्यूह की रचना करायी। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। पूरी सेना सहित अजातशत्रु को घेर कर बंदी बना लिया। कुछ दिनों बाद

प्रसेनजित के मन में आया, 'भले ही अजातशत्रु ने अपने पिता मेरे बहनोई की हत्या करायी, अपनी मां मेरी बहन को कष्ट पहुंचाया, काशी राज्य को लेकर अनेक बार युद्ध किया और मुझे धन-जन की क्षति पहुंचायी पर है तो अपना भांजा ही। बैर पालने से लाभ नहीं। उसकी चतुरंगिणी सेना को छीन लिया। अपनी पुत्री वजीरी कुमारी से उसका ब्याह कर दिया। वही काशी राज्य उसे दहेज देकर हमेशा-हमेशा के लिए विवाद और संघर्ष को समाप्त कर दिया। दोनों पुनः पहले जैसे मित्र बन गये। उस रात कोशलनरेश चैन से सोये।

अध्याय-७

तृष्णा, तू न गयी.....

पिछले अध्याय का अंत कोशलनरेश प्रसेनजित की चैन की नींद के साथ हुआ। पर जीवन में कितनी रातों में ऐसी नींद संभव है? वह भी किसी राजा के लिए? प्रस्तुत अध्याय की घटनायें राजा के जीवन के बेचैनी-भरे प्रसंगों को दर्शाती हैं।

दुःस्वप्न और तीन भय

एक बार रात के अंतिम प्रहर में राजा प्रसेनजित ने सोलह विचित्र और भयानक स्वप्न देखे। जगने पर वे बहुत ही डर गये। फिर उन्हें नींद नहीं आयी, बैठे-ही-बैठे रात बितायी। सुबह उन्होंने पुरोहित को बुलवाया और स्वप्नों को बताकर पूछा– 'आचार्य, इन स्वप्नों का अर्थ क्या होगा? मैं बहुत भयभीत हूं।'

'महाराज स्वप्न अच्छे नहीं हैं। इनके तीन खतरे हैं– आपकी जान को, आपके राज्य को और आपकी भोग-संपत्ति को। इनमें से कोई एक या ये तीनों घटित हो सकते हैं।'

'आचार्य, मेरी रक्षा के लिए कोई उपाय कीजिये।'

'देव, ये स्वप्न तो हैं अति भयंकर, पर आपके लिए कुछ उपाय तो करना ही होगा। वर्ना हमारी विद्या किस दिन काम आयगी?'

'हां, अब हमारा जीवन, राज-पाट सब कुछ आपके हाथों में है।'

बहुत धन और भोग पदार्थ की प्राप्ति की आशा में पुरोहित ने राजा को आश्वासन दिया– 'महाराज, इनकी शांति के लिए यज्ञ करना होगा। आप चिंता न करें।' फिर विचित्र प्रकार के पशु-पक्षी एकत्र किये जाने लगे। महल में ब्राह्मणों की अत्यधिक आवाजाही देखकर रानी मल्लिका ने इसका कारण राजा से पूछा।

'देवी, आपको पता नहीं। मैंने रात में भयानक स्वप्न देखे हैं जिनसे मेरी जान और राज्य को खतरा है। इनके निवारण के लिए यज्ञ किया जायगा।'

'महाराज, आपने ब्राह्मण पुरोहित से तो स्वप्नों का अर्थ और फल पूछा। पर क्या ब्राह्मणों में अग्र, सर्वज्ञ, समस्त लोकों के अग्र ब्राह्मण से इनके बारे में कुछ पूछा?'

'देवी, यह कौन है समस्त लोकों में अग्र ब्राह्मण?'

'महाराज, आप नहीं जानते? यह भगवान सम्यकसंबुद्ध हैं। आप इन भगवान से स्वप्नों के अर्थ और फल पूछें।'

देवी मल्लिका के प्रेरित करने पर राजा उनके साथ भगवान के पास प्रातः पहुंचे। भगवान का यथोचित अभिवादन करने के बाद राजा ने स्वप्नों के बारे में, उनसे उत्पन्न भय के बारे में और उनके फल के बारे में पूछा– 'भंते, भगवान सर्वज्ञ हैं, त्रिकालदर्शी हैं, आपसे कुछ भी अगोचर नहीं। भगवन, केवल आप ही मेरे स्वप्नों का अर्थ कह सकते हैं।'

'हां महाराज, मुझे छोड़कर लोक में कोई और इन स्वप्नों का रहस्य नहीं बता सकता। मैं आपको बताऊंगा, आप उन स्वप्नों का वर्णन तो करें।'

राजा ने एक-एक करके स्वप्नों को बताना प्रारंभ किया। भगवान उनका फल बताते गये। उनमें से कुछ स्वप्नों के विवरण उनके फल सहित नीचे दिये जाते हैं।

'भंते, एक स्वप्न ऐसा था कि चार काले सांड़ विभिन्न दिशाओं से गुर्राते हुये और गरजते हुये लड़ने की इच्छा से राजांगण में आये, पर बिना लड़े ही चले गये।'

'महाराज, इस स्वप्न का फल भविष्य में होगा, अधार्मिक राजाओं और कंजूस मनुष्यों के समय में। धर्म की ग्लानि होने पर एक समय ऐसा आयगा जब वर्षा एकदम नहीं होगी। चारों दिशाओं को घेरते हुये बादल उठेंगे, बिजली कौंधेगी, गरज होगी, बरसने का पूरा लक्षण दिखाकर ये बादल स्वप्न के सांड़ों की तरह बिना लड़े (बरसे) चले जायेंगे। पर महाराज, इसके कारण आपको कोई खतरा नहीं है।'

'भंते, एक यों था कि पृथ्वी से उगते ही छोटे-छोटे पौधे फूलने-फलने लगे। भगवन, इस विचित्र स्वप्न का फल कहें।'

'महाराज, इसका अर्थ है कि भविष्य में मनुष्यों की आयु क्षीण होगी।

लोग बहुत ही कामी होंगे। आयुप्राप्ति के पूर्व ही कुमारियां ऋतुमती होंगी एवं संतान जनेंगी। छोटे पौधों का पुष्पित एवं फलित होना इसी बात का सूचक है।'

राजा ने आश्चर्य के साथ आगे के स्वप्न के बारे में कहा– 'भगवन, मैंने देखा कि गायें अपनी बछड़ियों का दूध पी रही हैं।'

'आनेवाले दिनों में युवक-युवतियां, मां-बाप और सास-ससुर के प्रति अनादरयुक्त व्यवहार करेंगे। न तो ठीक से उनका भरण-पोषण करेंगे, न ही उनके साथ कायदे का व्यवहार करेंगे। वृद्धजन अनाथ और पराधीन होकर बेटे-बहू की कृपा पर जीवन-यापन करेंगे।'

इसी प्रकार राजा ने आगे कुछ और स्वप्न बताये। – 'प्रौढ़ बैलों को हल में न जोतकर बछड़ों को जोतना, दो मुंहवाले घोड़ों का दोनों ओर से चारा खाना, चारों दिशाओं से आकर लोगों द्वारा एक लबालब भरे घड़े में पानी डालना और खाली तूम्बों का पानी में डूबना देखना।'

'महाराज, आश्वस्त हों इनसे डरने की कोई बात नहीं। इन सभी स्वप्नों का विपाक भविष्य में होगा। आनेवाले समय में परंपरागत, कुशल, योग्य और प्रतिष्ठित पंडितों, अमात्यों, और न्यायाधीशों के स्थान पर राजा लोग अकुशल, अक्षम एवं अयोग्य पंडितों एवं अमात्यों आदि की नियुक्ति करेंगे। ये अक्षम अमात्य आदि अपना कार्य ठीक से संपादित नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार राज्य और समाज दोनों को ही दुर्दिन देखने पड़ेंगे। वैसे ही अधार्मिक और मूर्ख राजा लोभी मनुष्यों को न्यायाधीश बनायेंगे जो न्याय करते समय दो-मुंहे घोड़े की तरह दोनों पक्षों से रिश्वत लेंगे। भविष्य के राजा कृपण होंगे। वे जनपदवासियों की सुख-समृद्धि की चिंता न करके केवल अपने खजाने को ही भरने की सोच में पड़े रहेंगे। जनपदवासी अपने घरों से अन्न-धन ले जाकर राजा का खजाना ही भरते रहेंगे, जैसे चारों दिशाओं से आकर घड़े में पानी डालते लोग। राजा के अधार्मिक होने पर लोक की अवनति होगी। राजा कुलीनों के स्थान पर अकुलीनों को महत्त्व देंगे। कुलीन और प्रतिष्ठित लोग उपेक्षित और अपमानित रहेंगे। भिक्षुसंघ और गणकर्मों में भी लज्जावान भिक्षुओं के स्थान पर दुःशील अकुलीनों का वर्चस्व होगा, जैसे खाली तूम्बों का पानी में डूबना।'

भगवान द्वारा स्वप्नों के अर्थ एवं फल सुनने पर राजा प्रसेनजित को

थोड़ा ढाढ़स हुआ, उनके मन का बोझ कुछ हल्का हुआ। भगवान ने कहा महाराज, अब आगे के स्वप्नों को बतायें।'

'हां भंते, मैंने सोने की थाली में एक बूढ़े गीदड़ को पेशाब करते देखा, छोटी-छोटी मेढकियों द्वारा काले सर्पों को निगले जाते देखा, भेड़ें शेरों का पीछा करके उन्हें मुरमुरे की तरह खायें जा रहे हैं और लाख मुद्रा की कीमत का चंदनसार मिट्टी के मोल बिकते देखा।'

'महाराज, भविष्य में विजातीय राजा जातिकुल संपन्न लोगों पर शंका करके अकुलीनों को महत्त्व देंगे। जीविका के लिए, ब्याह-शादी के लिए कुलीनों को अकुलीनों का मुंह ताकना होगा। कुलीन लड़कियों का अकुलीनों के साथ सहवास होगा जो गीदड़ द्वारा सोने की स्वच्छ थाली में पेशाब करने जैसा है। समाज की अवनति होने पर लोग विकारों के वश में होंगे। तरुण युवक पत्नियों के वश में घर के नौकर-चाकर की तरह रहेंगे। धन-संपत्ति, खेती-बारी-पशु आदि सब पर उनका अधिकार एवं नियंत्रण रहेगा। हर बात में पुरुषों को स्त्रियों की डांट और झिड़क सहनी पड़ेगी। महाराज, यह सब वैसे ही है जैसे मेढ़की सांप को लील जाय। अधार्मिक भावी राजाओं के यहां कुलहीनों का दबदबा होगा, जो कुलीनों पर अभियोग मढ़ कर उनकी धन-संपत्ति को हड़प लेंगे, उन्हें डरायेंगे-धमकायेंगे। कुलीनों की सुनवायी कहीं नहीं होगी। उन्हें कहीं भी न्याय नहीं मिलेगा। पापी भिक्षु शीलवान भिक्षुओं को तंग करेंगे। सदाचारी भिक्षु जंगलों में छिपकर अपनी जान की रक्षा कर पायेंगे। महाराज, चंदन-सार का मिट्टी के मोल बिकने का अर्थ यह है कि आनेवाले समय में मेरे शासन का ह्रास होगा। भिक्षु लोभी और निर्लज्ज होंगे। उनके उपदेश लोगों की मुक्ति के लिए न होकर केवल अपने भोजन और वस्त्र के लिए होंगे। भिक्षु धन, यश और संसार में लिप्त रहेंगे। यह सब प्राप्त करने के लिए वे इस अनमोल शुद्ध धर्म को बेचेंगे जो चंदन-सार के बदले मट्ठा प्राप्त करने जैसा है।

पूरी व्याख्या का निष्कर्ष निकालते हुये भगवान ने कहा– 'महाराज, कालक्रम में ये स्वप्न फल देते रहेंगे, आप इनसे प्रभावित नहीं होंगे। पर आप या कोई भी इनके फलों को रोक नहीं सकता। वर्तमान में आपको इन स्वप्नों से कोई भय नहीं– न आपको, न आपके राज्य को, न ही आपकी भोग-संपत्ति को। हां, पुरोहित ने जो कुछ कहा वह आपके प्रति स्नेह या प्रेमवश नहीं, बल्कि धन के लोभ में। उसकी दृष्टि लौकिक

भोगों पर है। पूर्वकाल में भी राजाओं ने इन स्वप्नों को देखा था। उस समय भी सुमार्ग पर आरूढ़ महर्षियों ने हिंसायुक्त यज्ञों– गाय, बकरा, भेड़ आदि की बलि देने को उचित नहीं बताया। महाराज, यज्ञ ऐसा हो जो न व्यर्थ का खर्चीला हो, न हिंसायुक्त। ज्ञानी लोग ऐसे यज्ञ को महाफलदायी बताते हैं। ऐसे यज्ञ में सबका कल्याण, सबका हित और सबकी प्रसन्नता है। ऐसे महान यज्ञ से देवता भी प्रसन्न होते हैं।'

भगवान द्वारा स्वप्नों के अर्थ और फल कहे जाने के बाद कोशलनरेश प्रसेनजित आश्वस्त हुए। उनके मन का भय जाता रहा। भगवान की वंदना और प्रदक्षिणा करके प्रसन्नचित्त वे राजमहल लौट आये।

सुख-शांति की हत्या

कुशीनारा का मल्लकुमार बंधुल, कोशलराज प्रसेनजित का गुरुभाई और मित्र था। तक्षशिला में दोनों ने एक ही आचार्य से शिक्षा ली थी। मल्ल कुमारों द्वारा छल किये जाने पर अप्रसन्न होकर बंधुल राजा प्रसेनजित के यहां चला आया। श्रावस्ती में राजा ने उसका धूमधाम के साथ स्वागत किया और उसे सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। बंधुल ने अपने माता-पिता को भी वहीं बुला लिया और सुख से रहने लगा। कुछ दिनों के बाद बंधुल का विवाह मल्लकुमारी मल्लिका के साथ हुआ। बहुत दिनों तक उसे कोई संतान पैदा नहीं हुयी तो बंधुल ने उसे उसके मां-बाप के घर भेजने का निश्चय किया। पर शास्ता के कहने पर उसने अपना निश्चय बदल दिया। शीघ्र ही मल्लिका गर्भवती हुयी और उसने जुड़वां पुत्रों को जन्म दिया। इसके बाद कई बार उसके जुड़वां पुत्र पैदा हुये। कालांतर में बेटे-बहुओं से उसका घर भर गया।

सेनापति बंधुल राजा प्रसेनजित का पूरा विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मुकदमों में न्यायाधीशों के गलत फैसलों से खिन्न और दुःखी कुछ लोगों ने रोते-कलपते हुये बंधुल को अपनी व्यथा सुनायी। सेनापति ने उनका दुःखड़ा बड़े ध्यान से सुना। उसने मामलों की पुनः सुनवायी की और विचारपूर्वक न्याय करते हुये असली मालिकों को ही मालिक बनाया। बंधुल के न्याय से जनता बड़ी प्रसन्न हुयी और ऊंचे स्वरों में उसका जय-जयकार करने लगी। राजा को जब इस घटना का पता चला तब वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। घूसखोर न्यायाधीशों को हटाकर न्यायकार्य भी बंधुल के जिम्मे कर दिया। अब सबको समय से न्याय

मिलने लगा, किसी प्रकार की धांधली नहीं। जनता प्रसन्न रहने लगी। पर घूस न पाने से पहलेवाले न्यायाधीशों की आय घट गयी, इसलिए उन्होंने बंधुल के खिलाफ एक षड्यंत्र रचा। उन्होंने यह प्रचार करना शुरू किया कि सेनापति बंधुल प्रसेनजित को हटाकर राज्य हथियाना चाहता है। इस दुष्प्रचार का राजा पर प्रभाव पड़ा। बंधुल के ऊपर से राजा का विश्वास डिगने लगा। उसने दुष्प्रचार को सही मान लिया, इसलिए सेनापति को जान से मरवाने का निश्चय किया। पर ऐसे मार डालने से उसके ऊपर दोषारोपण होगा, इसलिए उसने एक उपाय सोचा। सीमाप्रांत में अपने ही लोगों द्वारा विद्रोह कराकर उसे नियंत्रित करने हेतु बंधुल को उसके बेटों सहित भेजा। सेनापति ने राजा के आदेश का पालन किया। विद्रोह शांत करके बंधुल के लौटते समय राजा द्वारा नियुक्त योद्धाओं ने सभी बेटों सहित बंधुल का सिर काट कर सभी को जान से मार डाला। इसकी सूचना गुप्त ढंग से उन्होंने राजा तक पहुंचा दी।

उसी दिन बंधुल की पत्नी मल्लिका ने पांच सौ भिक्षुओं के साथ दो अग्र श्राविकाओं को भोजन के लिए निमंत्रित किया था। पूर्वाह्न में ही दूत ने इस आशय का पत्र सेनापति की पत्नी को दिया कि तुम्हारे पति और पुत्रों का सिर काट कर उन्हें मार डाला गया। यह समाचार पाकर मल्लिका ने इस संबंध में किसी से कुछ नहीं कहा और सहज-स्वाभाविक ढंग से भिक्षुसंघ की सेवा में लगी रही। भोजनोपरांत धर्मसेनापति देशना देकर विहार चले गये। अब सेनापति की पत्नी मल्लिका ने बहुओं को बुलाकर यह भेद खोला– 'यद्यपि मेरे बेटे और तुम्हारे पति निरपराध रहे हैं, फिर भी अपने पूर्व कर्मफल को प्राप्त हुये। तुमलोग किसी भी प्रकार की चिंता और विलाप न करो। न ही राजा के प्रति अपने मन में कोई द्वेषभाव लाओ।'

बंधुल की पत्नी का यह उपदेश सुनकर गुप्तचरों ने राजा को बताया। उसके द्वेषरहित भाव को जानकर राजा को अपनी करनी पर बड़ा दुःख हुआ। वे बेचैन और उद्विग्न हो उठे। राजा मल्लिका के घर गये। उसकी बहुओं से क्षमायाचना की और मल्लिका से वर मांगने का आग्रह किया। विधिवत सबका क्रियाकर्म करने के बाद राजा के पास जाकर मल्लिका ने कहा, 'देव, आपने मुझे वर देने के लिए कहा है। मुझे और कुछ नहीं चाहिये बस, मेरी पुत्रवधुओं को और मुझे अपने मां-

बाप के घर जाने की अनुमति दे दें।'

मल्लिका के इस निवेदन पर राजा सहमत हो गये। सभी वधुओं को बंधुल की पत्नी ने उनके मायके भेज दिया। राजा प्रसेनजित ने अपने मन के संतोष और शांति के लिए बंधुल के भांजे दीर्घकारायण को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया। पर पुत्रों सहित बंधुल की हत्या और बंधुल की पत्नी मल्लिका द्वारा प्रदर्शित सहज क्षमाभाव दोनों ने राजा की सुख-शांति भंग कर दी। वे पश्चात्ताप के मारे व्याकुल और बेचैन रहने लगे। अंत में शांति की खोज में शाक्यों के जनपद में जहां उस समय भगवान विहार कर रहे थे वहां उनकी शरण में चल पड़े।

दो गज जमीन भी न मिली

नवनियुक्त सेनापति दीर्घकारायण के साथ कोशलनरेश भगवान के दर्शनार्थ शाक्य जनपद के मेदतकुम्प निगम पहुंचे। भगवान के आराम के पास जाकर वे सेनापति दीर्घकारायण को बाहर रोककर शास्ता की वंदना हेतु स्वयं गंधकुटी में चले गये। जाते समय पांच राजकीय चिह्नों (मुकुट, तलवार और जूते आदि) को उन्होंने सेनापति की सुरक्षा में सौंप दिया। अंदर पहुंचकर राजा मीठे स्वर में भगवान के साथ बातचीत करने लगे। अपने मामा के निरपराध मारे जाने का क्लेश दीर्घकारायण के मन से निकला नहीं था। अनायास उसे बदला लेने का अवसर मिल गया। राजा के पांचों चिह्नों को ले जाकर बिटटूभ के हवाले कर उसने उसे राजा घोषित कर दिया। प्रसेनजित की सवारी के लिए एक घोड़ा छोड़कर सेवा के लिए एक स्त्री को वहीं नियुक्त कर दिया। स्वयं बिटटूभ के साथ श्रावस्ती चला गया।

भगवान से वार्तालाप के बाद जब प्रसेनजित बाहर आये तब केवल घोड़ा देखकर उन्होंने उस स्त्री से पूछा। उस औरत की बातें सुनकर वे सबकुछ समझ गये। अपने भांजे मगधराज अजातशत्रु की सहायता से बिटटूभ को घेरने की योजना बनाकर वे राजगृह की ओर चल पड़े। वहां जाते समय उन्हें रास्ते में कुअन्न भोजन मिला और प्यास लगने पर उन्होंने बहुत पानी पिया। रास्ते की थकान और सुकुमार स्वभाव होने के कारण उनका भोजन ठीक से पचा नहीं। राजगृह देर से पहुंचे, इसलिए नगर के भीतर उनके प्रवेश करने के पूर्व नगर द्वार बंद हो गया। नगर के बाहर उन्हें एक धर्मशाला में शरण लेनी पड़ी। रात में उन्हें कई बार

दस्त हुआ, इसलिए बार-बार उन्हें उठकर बाहर जाना पड़ा। थकान और बार-बार के दस्त के कारण वे काफी कमजोर हो गये, चलने-फिरने में भी असमर्थ। निःशक्त होकर वे उस सेविका की गोद में गिरे और वहीं उनके प्राण पखेरू उड़ गये। राजा प्रसेनजित की मृत्यु पर वह स्त्री विलाप करने लगी। अपने मामा कोशलनरेश की मृत्यु का समाचार पाकर मगधराज अजातशत्रु ने उनका अंतिम संस्कार किया। बिटटूभ को पकड़ने के लिए उसने आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी, पर अमात्यों ने उसे ऐसा न करने की सलाह दी।

कोशलनरेश प्रसेनजित की ऐसी आकस्मिक मृत्यु कि उनका शव अनाथों की तरह पड़ा रहे, उनके ही कर्म का फल था। एक विवादास्पद अवसर पर शास्ता के अग्रश्रावक सारिपुत्त और महामोग्गल्लान राजा प्रसेनजित के दर्शनार्थ उनके राजमहल आये। पर घूस स्वीकार करने के कारण राजा बाहर नहीं आये। जब स्थविरों ने आकर यह बात भगवान से बतायी तो उनके मुंह से सहज ढंग से निकला था– 'अपने राज्य में रहकर उसे मरने का अवकाश नहीं मिलेगा।' सचमुच वही हुआ। अपने कोशल राज्य के बाहर, मगध में राजगृह नगर के पास, एक सामान्य-सी धर्मशाला में थके-हारे प्रसेनजित मरे पाये गये, जिनके नाम पर रोने के लिए केवल एक अनजान स्त्री थी।

जैसी करनी वैसी भरनी

कोशल की राजसत्ता हथियाने के बाद राजा बिटटूभ को अपने ननिहाल में शाक्यों द्वारा किये गये अपने अपमान की घटना याद आयी। सारा दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम गया। उसका खून जैसे खौलने लगा। उस समय की गयी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसने प्रतिशोध की तैयारी शुरू कर दी। एक बड़ी सेना के साथ शाक्यों पर आक्रमण करने के लिए उसने कूच किया। भगवान गौतम बुद्ध भी शाक्यवंशी थे। उस दिन भोर में लोकों का अवलोकन करते समय उन्हें अपने रिश्तेदारों का विनाश दिखायी पड़ा। भगवान उनकी रक्षा के लिए कपिलवस्तु पहुंच गये। बिटटूभ ने जब कपिलवस्तु के समीप एक पेड़ के नीचे बैठे भगवान को देखा तब उनकी वंदना करके वह श्रावस्ती लौट आया, क्योंकि भगवान के कारण ही उसे और उसकी मां को राजसी सुविधा पुनः प्राप्त हुयी थी। इस प्रकार उसने तीन बार प्रयास किये पर वहां भगवान को

उपस्थित देखकर वह तीनों बार लौट गया। जब चौथी बार बिटटूभ शाक्यों पर आक्रमण के लिए चला तो भगवान ने शाक्यों के पूर्वकर्म का अवलोकन किया। शास्ता ने देखा कि शाक्यों ने अपने पूर्वजन्म में एक नदी में विष मिलाने का पापकर्म किया था, जो फल देने हेतु अब पक चुका था। इसलिए इस बार वे कपिलवस्तु नहीं गये।

राजा बिटटूभ अपनी सेना सहित कपिलवस्तु पहुंचा। केवल अपने नाना महानाम के परिवार को और उनके यहां ठहरे लोगों को छोड़कर आबालवृद्ध वनिता सबकी हत्या करवा डाली, खून की नदी बह चली। उसी खून से उस फलक को धुलवाया जिस पर उसके बैठने के कारण उसे दूध से धोया गया था। पूरा नरसंहार करने के बाद वह श्रावस्ती लौट रहा था।

रास्ते में अपनी सेना के साथ रात में राजा बिटटूभ अचिरवती नदी के तट पर पहुंचा। वहीं छावनी में निवास किया। कुछ सैनिक नदी के किनारे लेटे और कुछ नदी के बीच में निकले हुये बालू-टीले पर। नदी के किनारे लेटे सैनिकों ने अपने पूर्वजन्म में बहुत पाप किया था, पर जो नदी के बीच टीले पर लेटे थे, वे निष्पाप थे। उसी समय बहुत सारी चींटियों से परेशान किनारे वाले सैनिक, जिन्होंने पाप किया था, अपने को बचाने के लिए नदी के बीच टीले वाले सैनिकों के पास चले आये। कुछ ही देर में भीषण वर्षा हुयी। नदी में जोरों की बाढ़ आयी जिससे राजा बिटटूभ और उसकी सारी सेना बह गयी। वे सभी मछलियों और कछुओं के भोजन बन गये। भिक्षुओं ने जब भगवान से इन घटनाओं की चर्चा की तब उन्होंने कहा– 'भिक्षुओ, भले ही इस जन्म में शाक्यों का मरण अयुक्त हो, पर पूर्वजन्म में किये हुये पापकर्म के कारण उनकी मृत्यु युक्त ही है।' फिर जब बिटटूभ और उसकी समस्त सेना के बाढ़ में बह जाने की बात उठी, तब भिक्षुओं को उपदेश देते हुये भगवान ने कहा कि सबकुछ भूलकर अपने मनोरथ के पीछे पड़े विषयासक्त व्यक्ति की ऐसी ही गति होती है। इसके समर्थन में भगवान ने यह कहा–

भोगों के संग्रहकर्ता, आसक्तियुक्त मानव को।
मृत्यु बहा लेती, जैसे प्रबल-बाढ़ सुषुप्त गांवों को।।

अध्याय-८

उपासक प्रसेनजित

भले ही कोशलनरेश प्रसेनजित के मन से तृष्णा का पूर्णतया उन्मूलन न हुआ हो, पर भगवान के सान्निध्य में आने से उनमें सहज ढंग से बहुत सुधार हुये। प्रारंभ में भगवान और धर्म के प्रति उनके मन में अनेक शंकायें उठा करती थीं। उनके समाधान के लिए वे कभी अपनी रानी देवी मल्लिका से चर्चा करते या सीधे स्वयं भगवान के पास चले आते और उनसे देशना प्राप्त करते। चाहे जितना संदेह उनके मन में रहा हो, पर वे उन संदेहों के प्रति हठी नहीं थे। निम्नलिखित प्रसंग राजा के मन में आये सुधारों को ही प्रदर्शित करते हैं।

जो जाने सो निहाल

एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिण्डिक के जेतवन महाविहार में विहार करते थे। प्रसेनजित कोशल एक युद्ध से लौटे थे जिसमें उसने विजयश्री प्राप्त की थी। उसी सबका हाल-समाचार बताने वह भगवान के पास आये, भगवान विश्राम कर रहे थे। भिक्षुओं से अनुमति प्राप्त करके राजा ने अर्गला खटखटाया, भगवान ने द्वार खोल दिया। शास्ता के चरणों में सिर से नमस्कार करके राजा उन्हें चूमने लगे और बोले– 'भगवन, मैं कोशलनरेश प्रसेनजित हूं।'

'महाराज, क्या बात है जो आप इस शरीर के प्रति इतना सेवाभाव दरसा रहे हैं?'

गद्‌गद स्वर में प्रसेनजित ने कहना प्रारंभ किया– 'भंते, भगवान के प्रति कृतज्ञतावश मैं इतना सेवाभाव प्रदर्शित कर रहा हूं, इतनी मैत्री व्यक्त कर रहा हूं। भगवान बहुजन के हित, बहुजन के सुख, बहुजन के मंगल में लगे हैं। भगवान कुशल आर्य हैं, आर्यज्ञान में स्थापित करने वाले हैं। भगवान कुशलशील हैं, ज्येष्ठशील हैं। इस कारण से भगवान के प्रति मैं सेवाभाव प्रदर्शित कर रहा हूं।

'भगवान चिरकाल तक अरण्यवासी रहे हैं, एकांत सेवन करते रहे

हैं। भगवान अल्प भोजन, अल्प वस्त्र, अल्प शयनासन और अल्प औषधि से संतुष्ट रहते हैं। भंते, भगवान आदरणीय हैं, सत्कार योग्य हैं, दक्षिणा योग्य हैं, प्रणाम करने योग्य हैं और लोक में सर्वोत्तम पुण्यक्षेत्र हैं। इस कारण से भी भगवान के प्रति इतना सेवाभाव, मैत्रीभाव प्रदर्शित करता हूं।'

कोशलनरेश ने आगे अपना भाव प्रदर्शित करना जारी रखा– 'भगवान निरर्थक बातों में नहीं पड़ते। चित्त विमुक्ति में सहायक कथायें जैसे– अल्पेच्छकथा, संतुष्टिकथा, प्रज्ञाकथा, विमुक्तिकथा, विमुक्तिज्ञान-दर्शन कथा आदि भगवान को अनायास प्राप्त हैं। फिर इसी शरीर में भगवान आप चारों चैतसिक ध्यान बहुलता से, प्रचुर मात्रा में अनायास प्राप्त करनेवाले हैं। इसलिए भी भगवान के प्रति मैं इतना मैत्रीभाव प्रदर्शित करता हूं।

'भंते, भगवान अनेक पूर्वजन्मों का, एक जन्म का, दो जन्मों का, पांच जन्मों का, दस जन्मों का, सौ जन्मों का, लाख का, कल्प का, अनेक कल्पों का, संवर्त कल्पों का, विवर्त कल्पों का– अवलोकन कर लेते हैं। अमुक जन्मस्थान, नाम, गोत्र, वर्ण, आयु, भोजन, सुख-दुःख, च्युति, पुनर्जन्म ग्रहण आदि स्मरण कर लेते हैं। फिर, भगवान अपने दिव्य चक्षु से प्राणियों को मरते, जनमते देखते हैं। उनकी हीन योनि, श्रेष्ठ योनि, कर्मानुसार सुगति, दुर्गति को देख लेते हैं। आप यह भी जान जाते हैं कि शरीर छूटने पर देवलोक, मानवलोक, अपायलोक में कौन, कहां जन्म ग्रहण कर रहा है? आप यह भी जान जाते हैं कि मन, वचन और काया से किसने सत्कर्म या दुष्कर्म किया है। भगवान, आप दिव्य, विशुद्ध मानवोत्तर चक्षु से सब कुछ देख लेते हैं। इसलिए भी भगवान के प्रति मेरा सेवाभाव-मैत्रीभाव प्रदर्शित करना युक्त है।'

केवल अपने लिए नहीं, केवल मनुष्यों के लिए भी नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के लिए बुद्ध की करुणा और मैत्रीभाव के प्रति विभोर राजा की वाणी रुक नहीं रही थी। आगे– 'भगवान आस्रवों का क्षय कर अनाश्रव चित्तविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी शरीर में स्वयं साक्षात्कार करके विहार करते हैं। इसलिए भी भगवान आपके प्रति मेरा सेवाभाव-मैत्रीभाव प्रदर्शित करना उचित है।'

धरम बड़ा बलवान

सेनापति बंधुल की हत्या के पश्चात्ताप से प्रसेनजित कोशल के चित्त को चैन नहीं मिल रहा था। उसे राज-काज भी नहीं सुहाता था। उद्विग्न और चंचल मन वह मेदतकुम्प निगम की गंधकुटी में भगवान के पास पहुंचे। उनके चरणों में गिरकर अपना नाम बताया और भगवान के हाथ-पैर दबाने और चूमने लगा।

शास्ता ने पूछा– 'महाराज, क्या बात है कि इस शरीर के प्रति इतना सम्मान और गौरव दिखा रहे हैं?'

उत्तर में प्रसेनजित ने जो कुछ भी कहा उससे शास्ता और धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा का अनुमान लगाया जा सकता है।

'भगवान, आप सम्यकसंबुद्ध हैं, आपका धर्म अच्छी तरह आख्यात है, संघ सुमार्ग पर आरूढ़ है। भंते, यहां भिक्षुओं को जिस प्रकार धर्म के प्रति, ब्रह्मचर्य के प्रति समर्पित देखता हूं, उस प्रकार अन्य आश्रमों और गणों के परिव्राजकों और ब्राह्मणों को नहीं देखता। अन्य आश्रमों के श्रमण, ब्राह्मण दस, बीस, तीस, चालीस वर्षों.....तक आश्रमों में निवास करने पर भी सांसारिक सुखों के प्रति लालायित रहते हैं तथा अवसर मिलने पर उनमें लिप्त हो जाते हैं।

'भंते, मैं राजाओं को आपस में विवाद करते देखता हूं, ब्राह्मणों को आपस में विवाद करते देखता हूं, क्षत्रियों को देखता हूं, वैश्यों को देखता हूं। वैसे ही, पिता-पुत्र को, भाई-भाई को, पति-पत्नी को, मित्र-मित्र आदि को आपस में विवाद करते देखता हूं। पर, आपके भिक्षुओं को हमेशा एक राय पाता हूं। वे विवाद-रहित हो एक दूसरे के प्रति मुदित भाव में दूध पानी की तरह घुले-मिले रहते हैं। भंते, यहां के अतिरिक्त मैं कहीं भी ऐसी एकमत परिषद नहीं देख पाता।

'फिर भंते, एक आराम से दूसरे आराम, एक आश्रम से दूसरे आश्रम घूमते-फिरते वहां के श्रमण-ब्राह्मणों को मैं कृशकाय, दुर्वर्ण, पीतवदन, धंसी आंखोंवाला देखता हूं तो ऐसा लगता है कि निश्चय ही ये श्रमण-ब्राह्मण बेमन से ब्रह्मचर्यवास कर रहे हैं। लगता है ये ब्रह्मचर्यवास करना नहीं, बल्कि अपने पूर्वजन्म का पापकर्म भोगने आये हैं। पर भंते, यहां के भिक्षुओं को स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, प्रसन्नचित्त, मृदुचित्त, संयमित और सौम्य पाता हूं।'

अभी संघ के गुणों का व्याख्यान समाप्त नहीं हुआ। कोशलनरेश बोलते जा रहे थे– 'भगवन, मैं राजा हूं। जिसे चाहूं निर्वासित कर सकता हूं, दंडित कर सकता हूं, मरवा सकता हूं। पर मेरे राज-काज में बैठे वक्त लोग बीच-बीच में बाधा डालते रहते हैं। मेरे बार-बार मना करने पर भी प्रतीक्षा नहीं करते, टोका-टोकी कर बैठते हैं। पर मैं देखता हूं कि जब सैकड़ों की परिषद में भगवान देशना करते हैं तब श्रावकों के खांसने तक के भी शब्द नहीं सुनायी पड़ते। भंते, मुझे याद है, एक बार भगवान भिक्षुपरिषद को उपदेश कर रहे थे। एक श्रावक को खांसी आ गयी। तब एक भिक्षु ने उसे घुटने से दबाकर संकेत किया– 'आयुष्मान निःशब्द हों, शांत हों, भगवान धर्म-देशना कर रहे हैं।' आश्चर्य है भगवन! अद्‌भुत है!! बिना डंडे के, बिना शस्त्र के, बिना भय के इतनी सुविनीत परिषद मैंने कहीं और नहीं देखी।'

अब राजा ने विवादियों की चर्चा प्रारंभ की– 'भंते, मैं ऐसे क्षत्रिय पंडितों को, ब्राह्मण पंडितों को, गृहपति पंडितों को, श्रमण पंडितों को जानता हूं जो भगवान का आगमन सुनकर उनसे प्रश्न करने के लिए, उनसे बाद रोपने के लिए, उन्हें पराजित करने के लिए पहुंच जाते हैं। पर भगवान के पास पहुंचते ही वे पंडित न तो प्रश्न पूछ पाते हैं, न विवाद रोप पाते हैं। यदि हिम्मत करके कोई ऐसा करता भी है, तो या तो स्वयं में उलझ जाता है या भगवान के उत्तर या प्रश्न के सामने वह स्वयं निरुत्तर हो जाता है। वे भगवान से धर्मकथा सुनकर, प्रेरित होकर, भगवान के शिष्य बनकर उनसे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं। कालक्रम में सत्य का साक्षात्कार करके वास्तव में अश्रमण से श्रमण और अब्राह्मण से ब्राह्मण बन जाते हैं। वे निःसंकोच स्वीकारते हैं कि पहले वे श्रमण-ब्राह्मण बनने का झूठा दावा करते थे। पर असली श्रामण्य और ब्राह्मण्य तो उन्हें भगवान की शरण में आने पर प्राप्त हुआ है।'

आगे एक विचित्र घटना का विवरण प्रस्तुत करते हुये कोशलनरेश ने कहा– 'भगवन, अभी तो सर्वाधिक आश्चर्य की बात कहना बाकी ही है। भंते, ऋषिदत्त और पुराण स्थपति मेरे ही अन्न-जल से पलते हैं, मेरा दिया खाते हैं। मैं ही उनके जीवन और यश का आश्रयदाता हूं। पर वे मेरा उतना सम्मान नहीं करते जितना, भगवन, आपका। एक बार की बात है मैं युद्ध के लिए जा रहा था। वे दोनों एक शाला में रुके थे, मैं भी उसी में पहुंचा। रात देर तक दोनों आपस में धर्म-चर्चा करते रहे।

सोते समय उन्होंने सिर उस ओर किया जिस ओर भगवान के होने के बारे में सुन रखा था और पैर उस ओर किये जिस ओर मैं सो रहा था। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मेरे भोजन पर पलनेवाले ये स्थापत्यकार मेरी ओर पैर करके लेटते हैं। मैंने सोचा, अवश्य ही वे शास्ता और धर्म-शासन में कोई ऐसी विशेषता देखते होंगे जो राजा और राज-शासन में नहीं है।'

फिर राजा ने कुछ व्यक्तिगत बात कही– 'भंते, भगवान क्षत्रिय, मैं भी क्षत्रिय; भगवान कोशलक मैं भी कोशलक, भगवान की अवस्था अस्सी वर्ष, मेरी भी अवस्था अस्सी वर्ष। ऐसे भगवान, उनके धर्म और संघ के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना, गौरव प्रदर्शित करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।' इतना कह कर राजा ने विदा ली।

कोशलनरेश के जाने के बाद शास्ता ने उनके भाषण की प्रशंसा की, उसका अनुमोदन किया। राजा के भाषण को भगवान ने धर्मचैत्य की उपमा दी। उसी प्रसंग में भिक्षुओं को उपदेश देते हुये उन्हें धर्मचैत्य सीखने, धर्मचैत्य धारण करने और धर्मचैत्य पूरा करने के लिए कहा।

सत्कार धम्मकाया का

बत्तीस महापुरुष लक्षणों से युक्त भगवान बुद्ध की भौतिक काया लोगों के लिए अति आकर्षण का विषय थी। उससे भी अधिक आकर्षक थी उनकी धम्मकाया (धर्मकाया)। पर यह धम्मकाया सबकी समझ में आनेवाली नहीं थी, वह गूढ़ थी। जैसे-जैसे कोशलराज प्रसेनजित का सान्निध्य भगवान के प्रति बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनके प्रति सम्मान, गौरव, भाव आदि में संवर्धन होता गया। यह संवर्धन किस प्रकार का था? लौकिक या पारलौकिक, भौतिक या आध्यात्मिक। इस संदर्भ में एक भिक्षु का कथन सारे संदेहों को दूर कर देता है।

'वासेट्ठ, इस लोक और परलोक दोनों में प्राणियों के लिए धर्म ही सर्वप्रमुख है, सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए ज्ञानी पुरुष धर्म के लिए विनम्र होता है, श्रद्धालु होता है और धर्म के रास्ते का अनुसरण करता है। पर लोगों की सोच इससे भिन्न है। वे ऐसा नहीं मानते। वे भौतिक शरीर को ही देख पाते हैं, सूक्ष्म धार्मिक स्वरूप को नहीं। अपनी अल्प समझ के कारण लोग कोशलराज के बारे में ऐसा सोचते हैं कि चूंकि राजा को यह मालूम है कि श्रमण गौतम शाक्यकुल से प्रव्रजित हुए हैं, शाक्यों में

राजा की रिश्तेदारी है, और शाक्य लोग उनके अनुयायी हैं इसलिए शाक्यलोग राजा के प्रति विनम्र रहते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं, आदर देते हैं, सेवा करते हैं और उनके वचनों का पालन करते हैं। अतः बदले में कोशलनरेश भी तथागत के प्रति वैसा ही व्यवहार करते हैं। वे नम्रता व्यक्त करते हैं, नमस्कार करते हैं, हाथ जोड़ते हैं, सेवा करते हैं और उनके वचनों का पालन करते हैं।

'भंते, फिर राजा किसका सत्कार करते हैं?'

'वासेट्ठ, राजा जो यह सब करता है वह केवल यह सोचकर नहीं कि श्रमण गौतम श्रेष्ठ कुल के हैं और मैं नीच कुल का हूं, श्रमण गौतम बलवान हैं और मैं दुर्बल हूं, श्रमण गौतम सुंदर हैं और मैं कुरूप हूं, श्रमण गौतम महाप्रभावशाली हैं और मैं अल्पप्रभावशाली हूं। बात ऐसी नहीं है। राजा भगवान के धर्म का सत्कार करता है, धर्म को सम्मान देता है, धर्म को पूजता है, धर्म को आदर देता है, धर्म को नमस्कार करता है, धर्म की सेवा करता है और धर्म को हाथ जोड़ता है, नमन करता है, वंदन करता है, अभिनंदन करता है। इस प्रकार प्रसेनजित भगवान की धम्मकाया के प्रति गौरव प्रदर्शित करता है और उनके वचनों का पालन करता है।

'वासेट्ठ, महाराज के लिए भगवान की धम्मकाया महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि धर्म ही समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ है, सर्वप्रमुख है।

विपश्यना साधना केंद्र

विश्वभर में विपश्यना के कुल 220 केंद्र हैं जिनमें भारत में 100 केंद्र हैं। इन केंद्रों पर प्राय: हर माह दस दिवसीय, लघु तथा दीर्घ आवासीय शिविर आयोजित होते हैं। उनमें से प्रमुख केंद्र धम्मगिरि का नाम यहां दिया जा रहा है साथ ही धम्मपत्तन तथा ग्लोबल विपश्यना पगोडा के भी नाम दिये जा रहे हैं। शेष सभी विपश्यना केंद्रों के पते, फोन, इमेल एवं शिविर की जानकारी निम्न वेबसाइट पर प्राप्त कर सकते हैं:

Website: www.vridhamma.org, www.dhamma.org

प्रमुख केंद्र– धम्मगिरि: विपश्यना विश्वविद्यापीठ, इगतपुरी-४२२४०३, जिला: नाशिक, फोन: ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४४१४४, २४४४४०, **Website:** www.vridhamma.org, **Email:** <info@giri.dhamma.org>

धम्मपत्तन: एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरीवली (पश्चिम) मुंबई - ४०००९१, व्यवस्थापक, फोन ०२२-२८४५२२३८, ३३७४७५०१, टेलि-फैक्स: ०२२-३३७४७५३१, Email: info@pattana.dhamma.org; Website: www.pattana.dhamma.org

ग्लोबल विपश्यना पगोडा: एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरीवली (पश्चिम) मुंबई - ४०००९१, फोन: ०२२-२८४५२२३५

विपश्यना विशोधन विन्यास

किताबें, सीडी एवं पत्रिका के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422403
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोन: ०२५५३-२४४९९८, २४४०७६,
२४४०८६, २४४१४४, २४४४४०,
(दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवादित विपश्यना साहित्य
स्थानीय केंद्रों पर उपलब्ध है)

विपश्यना विशोधन विन्यास के प्रकाशन अब ऑनलाइन भी खरीदे जा सकते हैं। कृपया देखें:

Website: www.vridhamma.org,
Email: vri_admin@vridhamma.org

आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का एवं श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्का

श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का जन्म म्यंमा (बर्मा) के मांडले शहर में १९२४ में हुआ। १०वीं कक्षा में सारे बर्मा में सर्वप्रथम आने पर भी पारिवारिक कारणों से आगे की पढ़ाई न कर सके। उन्होंने कम उम्र में ही अनेक वाणिज्यिक और औद्योगिक संस्थानों की स्थापना की और खूब धन अर्जित किया। अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना की। तनावों के कारण शिरोरोग (Migraine) के शिकार हुए, जिसका उपचार बर्मा के ही नहीं, बल्कि विश्व के प्रसिद्ध डॉक्टर भी न कर सके। तब किसी ने उन्हें 'विपश्यना' की ओर मोड़ा, जो आज उनके तथा अनेकों के कल्याण का कारण बन गयी है।

सयाजी ऊ बा खिन से श्री गोयन्काजी ने १९५५ में विपश्यना विद्या सीखी और चौदह वर्षों तक उनके चरणों में बैठ कर अभ्यास करने के साथ बुद्धवाणी का भी अध्ययन किया। १९६९ में वे भारत आये और मुंबई में पहला शिविर लगा। तत्पश्चात शिविरों का तांता लग गया। १९७६ में इगतपुरी में पहला निवासीय विपश्यना केंद्र बना और अब तक विश्वभर में लगभग २०६ केंद्र बन गये हैं तथा नित नये बनते जा रहे हैं, जहां प्रशिक्षित किये हुए लगभग १५०० विपश्यनाचार्यों के माध्यम से विश्व की ५९ भाषाओं में १०-दिवसीय शिविरों के अतिरिक्त, कई केंद्रों पर २०, ३०, ४५, ६० दिन के शिविर लगते हैं। सब का संचालन निःशुल्क होता है। भोजन, निवासादि का खर्च शिविर से लाभान्वित साधकों के स्वैच्छिक अनुदान से चलता है। इसके सर्वहितकारी स्वरूप को देख कर विश्व की अनेक जेलों और स्कूलों में ही नहीं, पुलिसकर्मियों, जजों, सरकारी अधिकारियों आदि के लिए भी शिविर लगाये जाते हैं।

ISBN 978-81-7414-405-8

VRI - H98